छप्पनवाँ ग्रन्थ

चित्रपट

[गद्य गीत]

शान्तिप्रसाद वर्मा बी. ए.

सस्ता-साहित्य-मण्डल,
अजमेर।

प्रकाशक
सस्ता-साहित्य-मण्डल,
अजमेर ।

प्रथमवार
२०००

मूल्य
छः आना

मार्च
१९३२

मुद्रक
जीतमल लूणिया,
सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर ।

दो बातें

हिंदी में गद्य-काव्य का आरम्भ कुछ ही वर्षों पूर्व हुआ है। श्री राय कृष्णदास की 'साधना' में इसका प्रथम सुनिश्चित रूप सामने आता है। उसके बाद तो सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमण प्रसादसिंह, श्री वियोगीहरि, श्री चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' इत्यादि कई सुलेखक सामने आते हैं। 'छायावाद' काल में, स्वभावतः, गद्य-काव्यों को विशेष महत्त्व मिला है और छायावादी कवियों तथा छायावाद-प्रेमियों से ही अधिकांश सुन्दर गद्य काव्य-लेखक हिंदी को प्राप्त हुए हैं।

जहाँ तक मैं जानता हूँ हिंदी में उत्कृष्ट गद्य-काव्यों का 'चित्रपट' तीसरा या चौथा सुन्दर संग्रह है। और इन सब संग्रहों में भावों की सुन्दरता हृदयोच्छ्वास की मार्मिकता और मधुर तथा सरल शब्द-निर्वाचन की दृष्टि से 'चित्रपट' अपना एक विशेष स्थान रखता है। अनेक सहृदय मित्रों ने इसे देखा और सराहा

है तथा इसके शीघ्र प्रकाशन के लिए कितने ही साहित्य-रसिकों ने उत्कण्ठा प्रदर्शित की है।

इसके लेखक श्री शांतिप्रसाद वर्मा, प्रयाग विश्वविद्यालय के एम० ए० के विद्यार्थी हैं। अपने उन सब परिचित बन्धुओं में, जो आज छात्रजीवन व्यतीत कर रहे हैं, मैं वर्माजी से सबसे अधिक आशा रखता हूँ। उनके पास समाज के सम्बन्ध में कुछ अत्यन्त संयत एवं सुन्दर विचार है। उनका हृदय स्वच्छ है। उनमें आदर्श की प्रेरणा है और जीवन की कठिनाई और कलुप की आड़ में वह अपने लिए कोई ढालुआ रास्ता नहीं चाहते। वह समतल भूमि पर चलते हुए भी ऊपर देखने के आदी हैं और अपने सम्पूर्ण जीवन को एक आदर्श के साँचे में ढालने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि उनसे समाज तथा साहित्य के क्षेत्र में अधिक आशा की जा सकती है।

'चित्रपट' के सम्बन्ध में मैं ज़्यादा कुछ न कहूँगा। अच्छी चीज़ की पहले से ही ज़्यादा प्रशंसा कर देने से ग्राहक सशंक हो जाते हैं तथा रचयिता की प्यास भी अनेक बार शान्त हो जाती है। हिंदी में कई सम्राट् ऐसे हैं जिन्होंने पहले बहुत सुन्दर लिखा पर आज गद्दी सुरक्षित, हो जाने पर, उनका माल दिन-दिन घटिया होता जाता है। मैं नहीं चाहता कि वर्माजी के साथ भी ऐसी ही घटना घटे।

पहले 'चित्रपट' राय कृष्णदासजी के यहाँ से प्रकाशित होने वाला था। वहाँ आज-कल करते-करते युग बीतने की कल्पना की जाने लगी। फिर वहाँ से लेकर मैंने इसे स्वयं प्रकाशित करने का विचार किया। साहित्य-सेवी का चिर-कथित दारिद्र्य इसमें भी बाधक हुआ। अन्त में सस्ता-साहित्य-मण्डल से प्रकाशित होने का

निश्चय हो गया। पुस्तक छपकर लगभग तैयार हो गई थी कि मण्डल पर सरकार ने कब्ज़ा कर लिया। अब मण्डल के मुक्त होने पर, यह भी प्रेस के बंधनों को पार कर साहित्य-हाट में उपस्थित है। यह इसकी लम्बी दर्दनाक कहानी है जो प्रायः प्रत्येक होनहार लेखक के साथ, हिंदी में, कभी न कभी अवश्य ही घटित होती है।

× × ×

पता नहीं, साहित्य की हाट में इस पुस्तक का कैसा स्वागत होगा। कैसा होना चाहिए, यह तो मैं भी कह सकता हूँ। पर उससे कोई लाभ नहीं। यह इसलिए कि रुचि-वैचित्र्य और भेड़िया धसान के सम्बन्ध में मुझे एक कहानी आज भी याद है। बस इतनी-सी ही है कि एक चित्रकार ने एक सुन्दर चित्र बनाकर बाज़ार में टाँग दिया और नीचे लिखा, इस चित्र में जहाँ जहाँ दोष मालूम पड़े वहाँ-वहाँ चिन्ह कर दिया जाय। दूसरे दिन जब वह चित्र लेने गया तो संपूर्ण चित्र चिन्हों एवं दोष-सूचक रेखाओं से भरा मिला।

दूसरे दिन उसने उस चित्र की एक और प्रति तैयार करके उसी स्थान पर लगाई और नीचे लिखा इसमें जहाँ-जहाँ कोई विशेषता हो वहाँ-वहाँ लोग चिन्ह लगा दें। दूसरे दिन, पहली बार की भांति ही, सारा चित्र गुण-प्रदर्शक चिन्हों से भरा मिला।

यह जन-रुचि पर कला की अमरता की विजय थी।

ऐसा ही 'चित्रपट' के सम्बन्ध में भी हो तो आश्चर्य नहीं। आश्चर्य या अनाश्चर्य 'चित्रपट' को रचयिता के लिए तो दोनों ही वाञ्छनीय हैं। वह सबको रंग देकर सजीव बना सकता है।

अजमेर
१८-२-३२

श्री रामनाथ 'सुमन'

मा को—

मेरा असीम, पर निरुद्देश्य जीवन, न जाने किस अनन्त-लोक में भ्रमण कर रहा था—जिस समय तुमने अपने हाथों के स्पर्श से उसे कर्म के सुन्दर बंधन में बाँध दिया।

मेरी छोटी और जीर्ण नौका न जाने किन उत्ताल तरंगों पर नाच रही थी—जिस समय तुमने अपने हाथों के स्पर्श से उसे एक निश्चित मार्ग की ओर बहा दिया।

तुम्हारे हाथों के स्पर्श से मेरा पुराना जीवन किरणों में स्नान किये हुए प्रभात के समान नवीन बन गया।

तुमने मेरे हाथों में जीर्ण नौका, टूटी बल्लियाँ और नया जीवन देकर मुझे अगाध महासागर के बीच छोड़ दिया।

और न जाने कहाँ अदृश्य हो गई।

धीरे-धीरे काला आकाश घिरने लगा और आशा की किरणों में निराशा के केवल कुछ आँसू चमकने लगे।

जबतक प्रकाश था, और मैं अंधकार में न था, मुझे तुम्हारा प्रभाव प्रतीत न हुआ। परन्तु अब जब मैं अंधकार और मंझधार में प्रकाश और किनारे के लिए चिल्लाता हूँ, मेरी पुकार के मूल में तुम्हारा ही प्रेम छलक उठता है।

आज इस सुदूर भविष्य में मेरी आत्मा तुम्हारे वियोग में व्याकुल हो उठी है।

अपनी छोटी जीर्ण नैया को भारी महासागर में खेते हुए मेरी पुरानी बल्लियाँ सड़ गई हैं, और मेरे निर्बल हाथ अशक्त हो गये हैं, परन्तु तुमने यह जो नवजीवन दिया है, उसी के बल पर मैं न जाने किस अज्ञात तट की ओर जा रहा हूँ।

लहरों की थपेड़ें खाकर मेरी नाव नाच उठती है—और भँवर की ओर खिंची चली जाती है, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि उस ऊँचे प्रकाशस्तम्भ के शिखर से माँ, तुम्हीं झाँक रही हो और मुझे आगे बढ़ने की प्रेरणा कर रही हो।

उस प्रकाश में मुझे तुम्हारी उसी वात्सल्यपूर्ण मुस्कान के दर्शन हो रहे हैं, जिससे तुम मेरा स्वागत करती थीं, मेरे बचपन की भोली शिकायतों के लिए मुझे सन्तोष देते समय—यद्यपि मेरी स्मृति आज भी तुम्हारी रूप-रेखा का स्मरण नहीं कर पाती और केवल तुम्हारे महान् मातृत्व का ही अनुभव करती है।

—शान्ति

वह आता है—

हे स्वामी,

तेरे चित्रपट को लेकर तेरी रंगशाला के एक नवीन चित्रकार ने आज जीवन के अनेक भाव-चित्रों को अंकित करने का साहस किया है ! उन्हे लेकर वह आ रहा है !

हे चिर-सुंदर,

ये भाव कहीं बाहर से नहीं आये। रचनाकार के धवल हृदय पर जीवन के इस जमघट की छाया विविध रंगों में चित्रित होती गई है।

जीवन में अनेक बार तू हृदय को स्पर्श करता है। तेरे प्रेम-कोमल स्पर्श में न जाने कितने भाव और कितने तूफान उठते हैं। कुछ चले जाते हैं, कुछ रह जाते हैं ! जो रह जाते हैं उनमें तेरे उस हलके स्पर्श को कलाविद् बाँधना चाहता है। उसके पास तेरे मिलन का यही साधन है।

तेरे मंदिर में न जाने कितने आते-जाते हैं ! न जाने कितने गुणियों ने तुझे रिझाने के साधनों को दूर तक फैला रक्खा है। मेला लगा हुआ है। ऐसे समय इस चिर-उन्नत में तेरे द्वारपाल उसे तुझ तक क्यों जाने देंगे ?

उपासना और प्रेम की इस सट्टी में वह अपना छोटा-सा उपहार लिये, संकोच से दबा हुआ, छिपे हुए बधिकों से डरे मृग-शावक की भाँति, आरहा है ! आलोचना और निन्दा के तीरों से कहीं उसका कलेजा न बिंध जाय ! देखना स्वामी !

उसके पास जो कुछ सर्वोत्तम था, वही लेकर वह आया है। उसकी दीनता में एक महानता है; उसके संकोच में प्रेम मौन है; उसके प्रथम प्रेमोपहार में उसके कलेजे का सम्पूर्ण सौरभ भिना हुआ है। तेरी रंगशाला में अगणित महन्त वैभव की गद्दी लगाये बैठे हैं। इसके पास वैसा कुछ नहीं है। इसीसे कहता हूँ, यह उनसे अच्छा निकलेगा, इसकी सेवायें अधिक मूल्यवान हैं !

हे स्वामी, तुम्हारे लिए तो हृदय की भाषा के ये दो शब्द ही बहुत हैं !

श्रीरामनाथ 'सुमन'

चित्रपट

चित्र-पट

तुमने मेरे अनुभव-शून्य हाथों में यह कोरा चित्रपट क्यों दे दिया ? मैं तो आड़ी-टेढ़ी रेखायें खींचना भी नहीं जानता !

ये रंग-भरी प्यालियाँ और यह सुन्दर तूलिका ! परन्तु किस प्रकार उसे इस कोरे चित्रपट पर फेर कर मैं तुम्हे प्रसन्न कर सकूँगा ? मैं तो आड़ी-टेढ़ी रेखायें खींचना भी नहीं जानता !

चित्रपट पर तूलिका रखते ही मेरी अँगुलियाँ काँप उठेंगी। मैं चित्र कैसे बनाऊँगा !

ओ कुशल चित्रकार ! मैं तेरे चरणों में अपना सर्वस्व रखे देता हूँ। तू मुझमें अपने चित्र का सौन्दर्य भर दे। मैं तो आड़ी-टेढ़ी रेखायें खींचना भी नहीं जानता !

फरवरी १९३०]

प्रतीक्षा

सर्वस्व, तुम्हारी प्रतीक्षा मे कब से बैठा हुआ हूँ !

मैं समझता था कि उषा की किरणों के साथ तुम मेरी कुटिया में प्रवेश करोगे। तुम्हारे प्रातःकाल के भोजन के लिए मैंने वन में से कुछ फल इकट्ठे किये थे। तुम्हारे दोपहरी के विश्राम के लिए मैंने फूलो की सेज बिछा रक्खी थी।

परन्तु अब तो संध्या का झुरमुट प्रकाश भी निशा से आलिंगन करने के लिए उतावला बन बैठा है। यह लो, दीपक जलाने का समय हो गया। क्या दिवस और रात्रि का संध्या-काल हमारी मिलन-वेला का रूप धारण कर लेगा?

चित्रपट

एक तूफान-सा उठ खड़ा हुआ है। देखो, मेरा दीपक हवा के इन झोंकों को नहीं सह सकेगा। देखो, मेरी माला मुरझाकर बिखर जायगी।

मेरे नाथ, मेरे जीवन, कबतक तुम्हारी प्रतीक्षा करूँ?

बिजली का सा प्रकम्पन और बादलों की सी गर्जना किस आकाश में नाच रही है? तनिक बाहर जाकर तो देखूँ, शायद तुम आये हो!

ओह, पानी की झड़ी लगी हुई है! वायु कैसी ठण्डी है! अंधकार कैसा भयानक है! नहीं, अब तुम नहीं आओगे, क्या दीपक बुझा दूँ?

द्वार बन्द करके लौटा तो क्या देखता हूँ कि तुम तो कुटिया में ही बैठे हुए मुस्करा रहे हो!

जून १९२९]

निमन्त्रण

तुमने स्वयं मुझे निमंत्रण दिया था, इस कारण मैं गर्व से फूल उठा और तुमसे मिलने की तैयारी करने लगा।

मैंने अपने प्रकृत-स्वरूप को बिगाड़ डाला। केतकी के पराग से मैंने अपने कुरूप चेहरे को सौंदर्य-संपन्न बनाने की चेष्टा की, शरीर पर रेशमी-परिधान धारण किया, चरणों में स्वर्ण-पादुकायें पहनीं, और शीश पर एक रत्न-जटित मुकुट रख लिया।

मैं सोचता था कि इस सजधज को देखकर तुम्हारी आँखें भी चमक उठेंगी और तुम मुझ से अधिक प्रेम करने लगोगे।

मैं क्या जानता था कि तुम मोहित तो मेरे उस रूप पर हुए थे, जो तुम्हारा दिया हुआ था।

राजपथ पर मुझे चिथड़ों से लिपटा हुआ भिक्षुक मिला। अपशकुन समझकर मैंने उसकी ओर से मुख फेर लिया।

चित्रपट

आह, यह तो सामने ही आकर खड़ा हो गया ! कुछ पाने की आशा से उसने मेरे सामने हाथ फैला दिये। शायद उसे पता नहीं था कि मैं सम्राट् से मिलने जा रहा हूँ !

मैंने उसे झिड़क दिया । वह चरणों में गिर पड़ा। मै उसे ठुकरा कर प्रासाद की ओर चल दिया ।

सभा मे जाकर मैं आश्चर्य-चकित हो गया। तुम्हारा सिंहासन तो सूना पड़ा था। मैं पास बिछे हुए आसन पर बैठ गया।

प्रतीक्षा से ऊब कर मैंने देखा। मेरा हृदय काँप उठा। अरे, भिक्षुक के रूप में यह तो तुम्हीं सामने खड़े थे !

मेरे स्वागत के लिए तुम वन्य-भोज लाये थे, पर मुझे न पहचान कर तुम सीधे चल दिये।

मैं क्या जानता था कि तुम मोहित तो मेरे उस रूप पर हुए थे जो तुम्हारा दिया हुआ था !

जून १९२९

चरणों में—

हे नाथ, मुझे इतना क्षुद्र बना दो कि एक छोटा-सा रजकण भी मुझे पैरों तले रौंद सके।

हे नाथ, मेरी आत्मा को इतना संकुचित और संकीर्ण बना दो कि उसमें तुम ही तुम रह सको!

हे नाथ, दीन-दुखियों की आह बन कर मैं सदा तुम्हारे हृदय में गूँजा करूँ।

हे नाथ, मुझे ऐसी बुद्धि दो कि मैं धन-सत्ता अथवा राज-सत्ता के सामने सिर न झुकाऊँ वरन् तुम्हारी सत्ता मे ही मेरी सत्ता रहे।

मुझे अभिमान क्यों है ? क्या इसलिए कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ ? परन्तु मैं तुमसे प्रेम भी तो इसीलिए करता हूँ न कि मुझे अभिमान है ! ग्रीष्म के प्रताप में और वर्षा के प्रकोप में जो कृषक मेरे लिए खेतों में काम करते हैं उनमें तो तुम्हारा व्यक्तित्व और भी अधिक है।

मैं उनसे प्रेम क्यों नहीं करता ? शायद इसीलिए न कि वहाँ मुझे कष्ट होता है !

हे नाथ, मेरा यह प्रेम कैसा है जो कष्ट नहीं सह सकता ?

हे नाथ, यदि मुझे अभिमान ही है तो उसे इतना क्यों नहीं बढ़ा देते कि मैं अपने में ही सारे विश्व को देखूँ।

हे नाथ, मुझे पूर्ण, असीम और अनन्त बना दो जिससे मेरे अभिमान में ठेस न लग सके।

हे विश्व-गायक, मुझ में अपना विराट् संगीत भर दो जिससे मैं विश्व के कण-कण में व्याप्त हो सकूँ।

मई १९२९]

आह्वान ?

इस गुलाबी प्रभात में, जब रजनी अंगड़ाई लेकर अपने अङ्गों को ढकते हुए उठ बैठी थी, मैं अपनी कुटिया से निकलकर महासागर के इस सूने तट पर क्यों आ बैठा ? फिर तुम मुझे बुलाते हो ? इन उद्भ्रान्त तरंगों पर क्या इस टूटी नौका में चढ़ कर मैं तुम्हारे पास आऊँगा ?

शीत से काँपते हुए मछुए अपने-अपने जाल डाल कर चले गये। वे उन बन्दी मछलियों को बाजार में जाकर बेचेंगे। मध्यान्ह का प्रखर सूर्य क्रुद्ध होकर संसार को देख रहा है। शून्य मे, चारों ओर, कल्पना के चित्र बिखर-बिखर कर नष्ट हो जाते हैं। और मैं महासागर के इस सूने तट पर अकेला बैठा हूँ।

महासागर का गंभीर गर्जन सुनकर हृदय बैठा

जाता है। पार जाने का साहस नहीं होता। परन्तु तुम्हारे आह्वान मुझे बरबस खींच रहे हैं। फिर तुम मुझे बुलाते हो? इन उद्भ्रान्त तरंगों पर क्या इस टूटी नौका में चढ़कर मैं तुम्हारे पास आऊँगा?

सन्ध्या ने अपना वासन्ती अञ्चल विश्व के सुकुमार विस्तार पर फैला दिया है। नीरवता का मधुर स्वर शून्य में सुनाई देता है। रक्ताभ पश्चिमाकाश में अस्त होते हुए, लज्जा से सूर्य लाल हो उठा है। अदृश्य और अस्पष्ट संसार अपने कार्य में व्यस्त है। और मैं महासागर के सूने तट पर अकेला बैठा हूँ।

लहरें आ-आकर किनारे से टकराती हैं और एक वज्र-नाद-सा उत्पन्न कर देती हैं, जिसकी प्रतिध्वनि क्षितिज के धुँधले अञ्चल को छूकर लौट आती है। मैं कल्पना करता हूँ कि जन-समूह अपने-अपने घरों की ओर लौट रहा है। परन्तु तुम्हारी पुकार ने मुझे इस सूने तट पर लाकर बाँध दिया है। इन उद्भ्रान्त तरंगों पर क्या इस टूटी नौका मे चढ़कर मैं तुम्हारे पास आऊँगा?

यह लो, सन्ध्या की नीरवता से चौंक कर अन्धकार भी जाग उठा है। वह छोटा-सा चन्द्रमा हलके बादलों में उड़ता हुआ सूर्य के पीछे-पीछे जा रहा है। तारे महासागर की चंचल लहरों में झलमल-झलमल करते हैं। दिन भर का थका हुआ यह आकाश महासागर की गोद में कूद

पड़ने के लिए लालायित है। संसार शान्त है, सो रहा है—परन्तु मेरी आँखों में आज नींद नहीं है।

इनमें तुम्हारे आह्वान की तृष्णा भरी हुई है। आज मैं अकेला ही महासागर के इस सूने तट पर बैठा हुआ तुम्हारे मौन-संगीत को सुन रहा हूँ। तुम मुझे बुलाते हो—न जाने किन सिकतामय कणों में बैठे हुए, अनन्त के किस निर्जन तट पर?

अब नहीं रोक सकूँगा। रात्रि की इस नीरवता में, महासागर की इन उद्भ्रान्त तरंगों पर, इसी टूटी नौका में चढ़ कर तुम्हारे पास आऊँगा।

आज्ञा दो कि अपनी इस जीर्ण-तरी को खोल दूँ और महासिन्धु की इन उद्भ्रान्त तरंगों पर बहा दूँ।

फरवरी १९३०]

साधना

दिन भर अपनी ज्वाला से तपाकर सूर्यदेव चले गये। पक्षी भी अपने-अपने घोंसलों में जाकर विश्राम करने लगे। आकाश में घनघोर घटा छा रही है। चारों ओर अन्धकार बढ़ता जाता है। पर तुम क्यों नहीं आते ?

बाहर वायु सघन-वन में अपना विषादमय राग गा रही है। कुटिया के भीतर बैठी हुई मैं प्रतीक्षा कर रही हूँ। आरती का दीपक बुझा जा रहा है। मालती-माला के पुष्प कुम्हला रहे हैं। पर तुम क्यो नहीं आते ?

आये ! मेरे स्वामी, मेरे सर्वस्व, अन्त में तुम आये। मैं दीपक लेकर आगे बढ़ी। ओह, वायु कैसी प्रबल थी !

चित्रपट

मैंने दीपक को अञ्चल से ढक लिया—अरे, फिर भी वह बुझ गया। ठहरो स्वामी, आती हूँ।

मैं दीपक जलाकर आगे बढ़ी; पर तुम अदृश्य हो गये!

वन-उपवन से मैंने सुमन सञ्चित किये। उन्हें गूँथकर एक माला बनाई। तुम आओगे, तुम्हें पहनाऊँगी।

ठहरो, द्वार खोलती हूँ।

तुम आ गये, मैं माला लेने अन्दर दौड़ी, पर तुम फिर अदृश्य हो गये।

विषाद और निराशा—

प्रेम का यही प्रसाद है? इस अनन्त साधना का यही मूल्य है!

मई १९२७]

क्यों ?

तुम आज आये हो ? आह, जब सर्वस्व लुट गया !

अरे, कुछ देर पहले क्यों न आये ? मैंने तो तुम्हारे स्वागत के लिए बड़े साज सजाये थे। गगन-चुम्बी वे विशाल अट्टालिकायें केवल तुम्हारे स्वागत के लिए ही रची गई थीं। ऊँचे सभामण्डप, विस्तृत प्रांगण, रत्नखचित खम्भे, सुवर्ण-सिंहासन... ...तो क्या यह स्वप्न था !......उफ़ कैसा ! ले गये, छीन ले गये। कल वे उस सिंहासन के चरणों को चूम रहे थे, आज सिंहासन उनके चरणों को चूम रहा है। हाय, काल की कैसी कुटिल गति है। और—

तुम आज आये हो ? आह, जब सर्वस्व लुट गया !

क्या कहते हो ? तुम विलास की गन्दी नालियों में लोटने वाले नारकी कीड़े नहीं हो ? सो तो भाई, मैं पहले ही जानता था। अरे, यह तो बाहरी स्वरूप है—हाँ, केवल बाहरी। भीतर का संसार देखोगे तो सिहर उठोगे, आँखें चौंधिया जायँगी। इन कृत्रिम आँखों में वह शक्ति कहाँ कि उस दैवी प्रकाश को देख सके। उसके एक-एक कण मे सृष्टि का रहस्य छिपा हुआ है, एक-एक परमाणु में परमात्मा का पवित्र वैभव अन्तर्हित है। तुम उसे क्या जानो, तुम उसे क्या समझो ?

तुम आज आये हो ? आह, जब सर्वस्व लुट गया !

मार्च १९२८]

???

प्रकृति ने अपने प्रांगण में किसी अज्ञात अतिथि के स्वागत के लिए अपना सारा वैभव बिखेर रक्खा था।

निस्सीम सागर की उद्भ्रान्त तरंगें चन्द्रमा की शुभ्र किरणों से किल्लोल कर रही थीं।

आकाश की चादर में कहीं नीले, कहीं पीले और कहीं हलके लाल सितारे जड़े हुए थे।

पीछे तमाल और ताली के वृत्तों की सीधी और अस्फुट पंक्ति शोभा दे रही थी।

मैं मुग्ध हो गया और संसार के क्षणिक ऐश्वर्य से उस अनन्त वैभव की तुलना करने लगा।

कब ?

प्रकाश ! कहाँ है प्रकाश ? उसी की प्रतीक्षा में तो मैं अंधकार में बैठा हूँ ।

भय और आशंका ने मेरे चारों ओर कारागार की दीवारें खड़ी कर दी हैं !

बाल्य-काल की वह मधुर-स्मृति आज भी हृदय को विकल कर देती है । उस समय अचानक प्रकाश का प्रस्फुटन हुआ था । मैं उसकी ओर दौड़ा भी था, पर मैं उसके साथ खेलने लगा ।

और, सूर्य की प्रथम किरणों से संस्पर्श होने पर केले के चौड़े पत्तों पर से अदृश्य हो जाने वाले ओस के कणों के समान वह प्रकाश फिर दिखाई नहीं दिया ।

मैं क्या जानता था कि वह प्रकाश तुम्हारा था।

आज मैं उसे कहाँ पाऊँगा ?

"दीपक प्रज्वलित रखो," यह तुम्हारी आज्ञा थी। आज मैं इस निविड़ अन्धकार में बैठा हुआ अपने फटे अञ्चल से इसी दीपक की रक्षा कर रहा हूँ।

आकाश में काले-काले घने बादल घिरते चले जा रहे हैं।

मेरा क्षुद्र दीपक बार-बार बुझ जाता है। मैं उसे फिर जलाता हूँ।

अरे, क्या वह इस प्रबल झंझावात को सहन कर सकेगा ?

वह फिर बुझ जाता है। और मैं बार-बार उसे जलाता हूँ।

न जाने इस क्रिया का कब अन्त होगा ?

फरवरी १९२९]

तुम्हारी वंशी !

भरी दोपहरी थी। काम करने का समय था। और हम अपने छोटे-से संसार में वैभव की गोद में विश्राम कर रहे थे।

हमारी नसों में बहने वाले रक्त की उष्णता सोई हुई थी। हमारे हृदयों में उठने वाली उमंग बेहोश थी। हम क्लीब और कापुरुष बने हुए थे।

उस समय हमने तुम्हारी वंशी की ध्वनि सुनी।

संसार चौंक उठा, भक्त विह्वल हो गये, गोपियाँ अपने अलसाये हुए अङ्गों को लेकर तुम्हारी ओर भागीं।

तुम्हारी वंशी एकाएक बज उठी थी, आज भी बज रही है और सदा बजती रहेगी। काल और विस्तार उसकी ध्वनि को नहीं रोक सकते। वह अनन्त है, असीम है।

सामने खड़े हुए पीपल के पत्ते वायु से काँप रहे हैं परन्तु उनमें भी तुम्हारी वंशी की ध्वनि सुनाई देती है।

अगस्त १९२९]

आश्चर्य !

मैं एक श्रान्त पथिक हूँ।

अब मेरे मार्ग पर प्रकाश की छाया पड़ने लगी है। ज्यों-ज्यों मै आगे बढ़ता हूँ मेरी थकान दूर होती जाती है। अब मुझे प्रज्वलित दीप-शिखा स्पष्ट दिखाई देती है।

परन्तु स्थिर दीपक को हाथ मे लिये तुम किस अन्धकार में हो, यह मुझे दिखाई नहीं देता।

आश्चर्य, ज्यों-ज्यों मैं तुम्हे खोजने के लिए आगे बढ़ता हूँ, मुझे स्वयं अपने खो जाने का भय होता जाता है।

सितम्बर १९२१]

एक चित्र

पहली झाँकी

अर्द्ध-आच्छादित और अर्द्ध-नग्न अवस्था में चन्द्रमा ने आकाश के वक्षस्थल पर प्रवेश किया।

कोमल बादलों का एक छोटा दल उनकी ज्योति चुराने के लिए उनके चारों ओर छिटक पड़ा।

परन्तु उनकी शोभा और भी दूनी हो चली।

ऋणी बादलों ने सौंदर्य का एक मण्डल बनाया। और अपने सहस्र हाथों को ऊँचा कर आशिषों के अणु उनके चरणो में बिखर दिये।

प्रकाश के कण होकर वे विश्व की छाती में छिद गये

दूसरी झाँकी

अष्टमी का चन्द्र था।

उसके चारों ओर हलके बादलों का एक समूह छिटका हुआ था।

उसकी ज्योति का पान कर वे बेहोश पड़े हुए थे।

उसकी ज्योत्स्ना का आलिंगन करने के लिए दूर्वा के तन्तुओं के रूप में पृथ्वी को रोमांच हो आया था।

आकाश में बिखरे तारे उसके ठुकराये हुए कणों को अपने हृदय में छिपाये हुए बैठे थे।

सोते हुए वृक्षों की विषम पंक्तियों के बीच में प्रकाश मुस्करा रहा था।

पृथ्वी पर मैं खड़ा था। मेरे पीछे मेरी छाया पड़ रही थी।

सितम्बर १९२९]

उपमा

चन्द्रमा नीले आकाश की गोदी में ऊपर पर धुनी हुई रुई के समान छिटके हुए उजले बादलों के झुण्डों में दौड़ने लगा। बालक धूल में खेलने के लिए मचल पड़ा!

सितम्बर १९२९]

सौंदर्य

उस दिन इठलाते हुए अकेले चन्द्रमा पर मैं मुग्ध हो गया था। आज छायापथ में बिछे इन तारों की शोभा देख कर उसका ध्यान भी न आया।

सितम्बर १९२९]

क्या माँगूँ ?

कल्पना के इस तपोवन में तुम्हारे सामने खड़े होकर मैं तुमसे क्या माँगूँ ?

या तो मेरे अझंकृत टूटे तारों को समेट कर मुझे अपने हाथों की वीणा वना लो जिससे मेरे द्वारा झंकृत तुम्हारे संदेश से संसार नवयुग के नूतन प्रभात का दर्शन करे !

या मेरी दग्ध-ज्योति का अपने अगाध स्नेह से सिञ्चन कर मुझे अपने हाथों का दीपक वनालो जिससे मेरे द्वारा प्रस्फुटित तुम्हारे प्रकाश में संसार नवयुग के नूतन प्रभात का दर्शन करे ।

सितम्बर १९२९]

विप्लव-गीत

संसार के झूठे संगीतो ! अपनी तानों को रोक दो। जिससे मैं जीवन का अनन्त संगीत सुन सकूँ।

मेरे हृदय में एक तुमुल युद्ध हो रहा है। उसके भीषण नाद में अपनी मतवाली मादकता को डुबा दो।

मेरे हृदय में एक दावानल सुलग रही है। उसकी प्रचण्ड ज्वाला में अपनी सुरीली किरणों को जला दो।

मेरे हृदय में एक उथल-पुथल मच रही है। उसकी विक्षिप्त आँधी में अपने सम्मोहक रागों को उड़ा दो।

मेरे हृदय में एक तूफ़ान उठ खड़ा हुआ है। उसकी लम्बी लहरों में अपने बेसुध प्राणों को मिटा दो।

तुम्हारे क्षय में मेरी विजय छिपी हुई है; तुम्हारी मृत्यु पर अपने जीवन का निर्माण करूँगा।

सितम्बर १६२९]

दो आँखें

प्रियतम, इन दो आँखों में तुमने अपनी सारी मदिरा उँडेल दी ! तुम्हारे रूप की सुधा का पान करने के लिए हृदय सिमिट कर इन दो आँखों में आ बैठा है। तुम्हारे सौंदर्य का संगीत सुनने के लिए कान खिसक कर आँखों के अन्तस्तल में आ छिपे हैं। नेत्र-वञ्चित ये दोनों पलक तुम्हारे अनन्त लावण्य का केवल अनुभव कर बेसुध पड़े हैं।

यदि आँखों को बन्द करता हूँ तो तुम्हारे खो जाने का भय हो जाता है। यदि आँखों को खुला रहने देता हूँ तो अपने खो जाने का भय हो जाता है। विकराल वासनाएँ पिघल कर इन दो आँखों में आ बसी हैं। आज इनमें कामना की ज्वाला धधक रही है।

प्रियतम, प्रतीक्षा की चिर-जागृति से प्रज्वलित इन दो आँखों में तुम आ बैठो तो मैं अपने भीगे पलको को बन्द कर चिर-निद्रा की विश्रान्ति में सो जाऊँ !

अक्टूबर १९१९]

खोज में

(१)

संसार का ऐश्वर्य मेरे चारों ओर बिखरा पड़ा है परन्तु मेरे हृदय में श्रावण के अँधेरे पक्ष की वर्षा आरम्भ हो गई है।

हृदय में एक हूक-सी उठती है, भावों की उड़ान में अतृप्ति का अनुभव होता है। विश्व के दृश्य में अपूर्णता दिखाई देती है।

हृदय में अचानक एक विचित्र भाव जागृत होता है। ऐसा जान पड़ता है, मैं कुछ खो बैठा हूँ।

क्या खो बैठा हूँ? अगणित दीपमालाओं के प्रकाश में मैं चारों ओर अपनी समृद्धि पर दृष्टि डालता हूँ।

मेरे पास अपने शृंगार के लिए, अपने भोजन के लिए, अपने संतोष के लिए, सभी कुछ उपस्थित है। परन्तु मैं कुछ और चाहता हूँ।

मैं बेचैन ज़रूर हूँ। पर, मेरे हृदय में हर्ष है या विषाद, यह मैं कह नहीं सकता।

ऐसा जान पड़ता है कि जिस वस्तु को मैंने खोया है, उसका मैं आज भी अनुभव करता हूँ। पर वह दिखाई नहीं देती।

ऐसा जान पड़ता है कि वही खोई हुई वस्तु मेरे हृदय के तारों को छूकर एक कँपकँपी-सी उत्पन्न कर देती है। पर मैं उसे कहाँ ढूँढूँ

ऐसा जान पड़ता है कि वह वस्तु मेरी आँखों में अपना उन्माद उँडेल रही है। पर मैं उसे कैसे पकड़ूँ ?

वह वस्तु भी कैसी है जिसे खोकर मुझे हर्ष और विषाद दोनों हो रहे हैं। परन्तु फिर भी मैं उसे पाना चाहता हूँ !

अरे, वह मुझे छूकर क्यों भाग जाती है। वह मेरे हृदय को, मेरी आँखों को और मेरी आत्मा को इस प्रकार से चौंका देती है !

मेरी मधुर व्यथा बढ़ती जा रही है। आज मैं उसकी खोज में निकल पड़ा हूँ। आकाश में बैठे हुए इन तारों में भी वह दिखाई नहीं देती।

परन्तु,

प्रकाश के रक्त से रँगे हुए इन हत्याकारी बादलों के सूर्य को अपने आरक्त हाथों में छिपा देने के पहले मैं उसे ढूँढ़ निकालूँगा।

(२)

उषा के वासन्ती प्रभात में मैं उसकी खोज में निकल पड़ा। पूर्व के गुलाबी आकाश से विदा लेकर सूर्य ने अपना सोनहरा रथ ऊर्ध्व-दिशा की ओर बढ़ाया।

मैं यह नहीं जानता कि मैं क्या ढूँढ़ रहा हूँ। अन्धकार के परे जो प्रकाश है, शायद मैं उसके परे किसी वस्तु की खोज में हूँ।

मेरी इस खोज-यात्रा को सुनकर मित्रों ने मुझे अपनी ओर खींचना आरम्भ किया उन्होंने कहा, "हम यह तो कह नहीं सकते कि तुम क्या ढूँढ़ रहे हो, वह हमारे पास है।"

इसी खोज मे मैंने उनके धूप-नैवेद्य से चर्चित, कई मीनारों से सुशोभित और ऊँचे शिखरों से युक्त सुन्दर मकानों को छान डाला। कई बार ऐसा जान पड़ा कि उनमें भी अभाव के भाव अभिव्यञ्जित हो रहे हैं। कई बार ऐसा जान पड़ा कि वे उस खोई हुई वस्तु को छिपा रखने के लिए बनाये गये हैं।

परन्तु वह वस्तु जिसकी मैं खोज में था मुझे न मिली। मेरे हृदय में अचानक यह भाव उठा कि वह वस्तु इस चहारदीवारी में बन्द नहीं हो सकेगी और इसी कारण वह अभीतक नहीं मिल सकी। कई बार ऐसा जान पड़ा कि उस वस्तु के ढूँढ़ने का तो केवल बहाना है।

शायद वह वस्तु इन दीवारों के बाहर किसी स्वतन्त्र संसार में मिले। इसी आशा से मैं अपने मार्ग पर आगे बढ़ता गया।

आज भी मेरी खोज पूरी नहीं हुई है पर ऐसा जान पड़ता है कि मैं सचमुच उसे पाने के लिए आगे बढ़ रहा हूँ। ऐसा जान पड़ता है कि जिस मार्ग पर मैं जा रहा हूँ, उसका अन्त उसी अन्तहीन और अज्ञात वस्तु की गोद में छिपा हुआ है।

मार्ग ऊबड़-खावड़ और उजाड़ है। पर मैं उसकी खोज में चल पड़ा हूँ।

और,

प्रकाश के रक्त से रँगे हुए इन हत्याकारी बादलों के सूर्य को अपने आरक्त हाथों में छिपा देने के पहले ही मैं उसे ढूँढ़ निकालूँगा।

अक्तूबर १९२९]

तुम ?

तुम ? कौन हो ? कहाँ हो?

मेरे हृदय के गुप्त अन्तस्तल में बैठे हुए क्या तुम्हीं मेरे भावों का मन्थन कर रहे हो ?

मेरी आत्मा के गूढ़ अन्तर में छिपे हुए क्या तुम्हीं मेरे विचारों का नियन्त्रण कर रहे हो ?

मेरी वाणी के हलके परदे में उतर कर क्या तुम्हीं मेरे वचनों को कोमल बना रहे हो ?

मेरी लेखनी के अग्रभाग से खिसक कर क्या तुम्हीं मेरी कविता में सौंदर्य भर रहे हो ?

तुम ? कौन हो ? कहाँ हो ?

अक्तूबर १९२९]

तुम्हारा मार्ग

मेरे आराध्य-देव, ज्येष्ठ की दुपहरिया में अपने घर से निकल कर मैं तुम्हारे घर की ओर चल पड़ा था।

मैं तुम्हारे मार्ग से परिचित नहीं था। किसी से पूछने में भी मैंने अपनी मर्यादा का उल्लंघन समझा।

अचानक मुझे एक मार्ग दिखाई पड़ा। मैं आनन्द के मारे उछल पड़ा। मैंने तुम्हारे उस मार्ग को पा लिया था जिसे अबतक कोई न ढूँढ़ सका था!

तुमसे मिलने के लिए उत्सुक तुम्हारे प्रेमियों के सामने खड़े होकर मैंने उद्घोषित किया कि अब उन्हे व्यर्थ भटकने का कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा क्योंकि मैंने तुम्हारे मार्ग का पता लगा लिया है।

मैंने देखा, वे मेरी ओर एक अवज्ञाभरी दृष्टि डालकर चले गये। मैं क्षुब्ध हो गया।

अब इस नैराश्यपूर्ण संध्या मे वापस लौटकर क्या देखता हूँ कि तुम्हारे उस मार्ग का पता भी नही है जिसे मेरे पहले कोई ढूँढ़ न सका था।

अक्तूबर १९२९]

नाविक !

मेरी यह जीर्ण नैया लहरों के थपेड़े खा-खा कर नदी के काले वक्षस्थल पर नाच रही है।

आकाश में अँधेरी घटाएँ छा रही हैं। नाव की टूटी छत पर वर्षा की बड़ी-बड़ी बूँदें टपक कर हृदय को कँपा देती हैं। उधर बिजलियाँ टूट-टूट कर प्रलय का संदेश सुना रही हैं।

नाविक, यह देख। नदी के कगारे बिखर कर नौका के सामने अड़ जाते हैं। नाविक, वह देख। आँधी का एक विक्षिप्त झोंका हमें नष्ट करने के लिए इधर ही आ रहा है।

नाविक, नैया को खेनेवाली अपनी इन बल्लियों को रोक दे और नाव को धारा में बह जाने दे !

अक्तूबर १९२९]

क्रांति

भगवान् भास्कर अस्ताचल की ओट में छिप जाते हैं। संसार से प्रकाश दूर होता जाता है। अन्धकारमयी रात्रि अपने अञ्चल में विश्व को छिपा लेती है।

प्रकृति निस्तब्ध और प्रशान्त हो जाती है। बड़ी-बड़ी लहरें सिमिट कर सागर की गोद में समा जाती हैं। वायु, ऐसा जान पड़ता है, अपनी पंखड़ियाँ समेट कर सो जाती है। वृक्षों के पत्ते मस्ती से झूमना बन्द कर देते हैं।

यह मृत्यु का चिन्ह है।

उषा की किरणें चुपचाप उदयाचल के पीछे से झाँकती हैं। अरुण की प्रभा संसार में प्रकट होती है। प्रभात का प्रकाश चिड़ियों को जगा देता है।

जीवन का कार्यक्रम फिर आरम्भ हो जाता है। सागर के हृदय पर बड़ी-बड़ी लहरें नाचने लग जाती हैं। वायु, मदमाती होकर बहने लगती है। भ्रमर पुष्पों पर मंड़राते हैं।

यह क्रान्ति का चिन्ह है!

मई १९२९]

तर्क !

तर्क ! तर्क का कविता से क्या सम्बन्ध ?

तर्क शब्दों का माया-जाल है; कविता शब्दों से परे है।

तर्क बुद्धि का गोरख-धन्धा है, कविता हृदय की भाषा है, मौन शब्दालाप है, निःशब्द संभाषण है, नीरव चीत्कार है !

बुद्धि समझती है, हृदय अनुभव करता है।

तर्क समझता है, कविता अनुभव करती है।

सितम्बर १९२९]

लोभ

सूर्यास्त के सौंदर्य की ओर से दृष्टि हटाकर ज़रा इस छाया की ओर तो देखो—विस्तार के लोभ में पड़कर यह अपने अस्तित्व को भी खो बैठी है !

अक्तूबर १९२९]

विजया

बड़ा सुन्दर स्वप्न था ! हा, तुमने जगा क्यों दिया ?

एक विशाल रण-प्रांगण में असंख्य सैनिक एकत्र थे ! वीरों की तलवारें सूर्य की किरणों में चमचमा रही थीं। भालों की नोक पर योद्धाओं के सिर उछलते थे। निषंग से निकले हुए वाण शत्रुओं की छाती का रक्त चूस रहे थे ! कहीं शान्ति न थी, कहीं विश्राम न था। चारों ओर खलबली मची हुई थी।

अन्त में सत्य ने असत्य पर विजय पाई। न्याय ने अन्याय को मिटा दिया। पाप की पराजय हुई। पुण्य का झण्डा ऊँचा उठा।

वह अपूर्व विजय थी। दशमी का चन्द्रमा भी आकाश में मुस्करा रहा था।

बड़ा सुन्दर स्वप्न था ! हा, तुमने जगा क्यों दिया ?

मैं उठ बैठा।

चित्रपट

चारों ओर अन्धकार था। विश्व सूना था। संसार सोया हुआ था। कोई-कोई साथी जाग भी उठे थे। वे उस नीरव अन्धकार में प्रकाश के लिए चिल्ला रहे थे पर वहाँ प्रकाश न था।

तुम भी सो रहे थे। मानों सोते में तुम चिल्ला उठे, "विजयदशमी आ गई।" क्या सचमुच विजया आ गई?

मैंने नेत्र मसल डाले। कहाँ थी विजया? प्रकाश की कोई रेखा भी तो नहीं थी जिसमें से वह आती।

एक महान् समुद्र था। उसमें कोई बड़ा जहाज़ फट गया था। सैकड़ो यात्री सागर की लहरों पर नाच रहे थे। कोई नीचे था, कोई ऊपर। ऐसे समय में ग़रीब विजया को कौन पूछता? डूबते-डूबते तुम क्यों चिल्ला उठे—"विजया-दशमी आ गई।"

अक्तूबर १९२८]

निस्तब्ध !

पृथ्वी पर चाँदनी और छाया गले मिलकर सो रही थीं। मार्ग के दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष थे जिनकी शाखाएँ चुम्बन के आदान-प्रदान में व्यस्त थीं। और मैं कल्पना के गले में हाथ डाले किसी स्वप्न-लोक में विचरण कर रहा था।

छाया शायद जाग उठी थी। उसके निश्वासों की मूक नीरवता में अपने चरणों के स्खलन को छिपा कर मैं नदी की ओर बढ़ा।

मुझे आश्चर्य हुआ कि चाँदनी भी इतनी चुपचाप वहाँ कैसे पहुँच गई थी। उस समय वह हलकी-हलका लहरों के साथ खेल रही थी। और कभी अट्टहास भी कर उठती थी।

यह देखकर सोये हुए वृक्षों का कवि-हृदय भी जाग उठा और उनकी पत्तियों के कोमल तारों के कम्पन से संगीत की सुरा बह निकली जिसे पीकर जीवन की प्रेयसी भी नदी के उसी किनारे पर बेहोश होकर गिर पड़ी।

बड़ी कठिनाई से आज मैं उसे जगा पाया हूँ। पर वह अपने संदेश की गुरुता के भार से दब कर महासागर के वक्षस्थल पर सोई हुई वायु के समान निस्तब्ध है!

अक्तूबर १९२९]

लाभ

प्रकाश को खोकर यह छोटी झील भी कितनी महान् हो गई है—इस समय इसमें सारे नक्षत्र-लोक को अपने हृदय में स्थान दे सकने की कैसी क्षमता आ गई है !

अक्तूबर १९२९]

प्रकाश की लालसा

"सूर्यास्त हो गया। सब चला गया, केवल अन्धकार शेष है।"

"कायर, तू नहीं जानता। उसके भीतर प्रकाश की लालसा छिपी हुई है !"

अक्तूबर १९२९]

सूने हाथों

अनेक भक्त तेरे द्वार पर अनेक उपहार लेकर आते हैं और वे तेरे कण्ठ को पुष्पमालाओं से भर देते हैं परन्तु आज मैं सूने हाथों तेरे मन्दिर में उन सब पुष्पमालाओं को तोड़ फेंकने के लिए आया हूँ जिनके बीच में रहने से तेरे प्रेमी तेरे चरणों का चुम्बन नहीं ले पाते !

अक्तूबर १९२९]

कौन !

तारों-भरी रात में मैं जब हरी-हरी घास पर लेट जाता हूँ, मेरे मस्तिष्क-लोक के इस छोर से उस छोर तक केवल एक प्रश्न गूँजा करता है—'विश्व की इस रंगभूमि का सूत्र-धार कौन है, कहाँ है ?'

अक्तूबर १९२९]

जीवन !

जीवन, आओ आज एकान्त में, नदी के इस सूने तट पर बैठ कर, कुछ बातें करें !

आकाश नीले मेघों से घिरा हुआ है, और हमारे मार्ग पर अर्ध-जागृति का-सा रहस्यमय प्रकाश अंधकार फैलाये हुए है।

न जाने किस धुँधले उषःकाल में तुमसे साक्षात् हुआ था पर अभी तक प्रकाश इन बादलों के पीछे छिपा बैठा है, और मैं तुम्हे पहचान नहीं सका हूँ।

इसी नदी के किनारे धीरे-धीरे कितने विशाल नगरों और निर्जन गावों को पार कर चुके हैं !

चित्रपट

नदी में विशाल लहरें उठती हैं, किनारे से टकराती हैं, और भँवर-सा बनाती हुई विलीन हो जाती हैं।

कभी-कभी तुम्हारा कम्पित कोमल स्वर अतीत को चीर कर चीख उठता है और पहचाना-सा जान पड़ता है।

न जाने कब इन मेघों के अदृश्य शिखर से खिसक कर सूर्य क्षितिज के नीचे जा छिपे और तुम्हारे जाने का समय हो जाय।

यदि किरणों की एक क्षीण रेखा भी होती, जिसके प्रकाश में मैं तुम्हे पहचान पाता!

जीवन मे तुम्हें इतना प्यार करने लगा हूँ कि तुम जब, गोधूलि के समय, विदा माँगोगे, तो शायद मेरी आँखों में आँसू छलक उठें।

जनवरी १९३०]

मेरा एकतारा

शैशव के उन सोनहले दिनों में अपने झोले में बहुत-सी वस्तुएँ भर कर मैं भिक्षा माँगने को निकल पड़ा, परन्तु तेरी उस विशाल राजधानी में सबको याचना ही करते पाया और आज मैं अपनी खाली झोली लेकर तेरे ऊँचे प्रासाद के नीचे आ बैठा हूँ।

दोपहर के इस प्रचण्ड सूर्य के आघात से मेरे नेत्रों की निद्रा जाग उठी है, और मैं इस प्रासाद की छाया में सूर्यास्त के समय तक सोता रहूँगा।

जिस समय तेरे विशाल सभा-भवन में आनन्द की लहर नाच रही होगी, और धन-वैभव इठलाता फिरेगा, मैं एक भिक्षुक, प्रजा के शासक से कुछ माँग कर अपना अपमान नहीं करूँगा परन्तु अपना एकतारा उठा कर उसमें वेदना का एक करुण आलाप लूँगा जिससे तेरे राजमहल की दीवारें हिल उठेंगी, और निर्मल आनंद का ताण्डव बिखर कर नष्ट हो जायगा!

जनवरी १९३०।

वे क्षण !

मेरे जीवन के वे क्षण कैसे ऊँचे थे, जिनमें तुम्हारा संगीत गूँज उठा था !

प्रकाश हो रहा था। विश्व की व्यापकता में तुम्हारे विराट् संगीत की स्वर-लहरी नाच रही थी।

मैंने अपनी वीणा उठा ली। उसके तारों पर अपनी अंगुलियाँ फेरने लगा।

परन्तु यह क्या ? मेरी तानें तुम्हारे विक्षिप्त संगीत में मिल गईं और गूँज उठीं।

अचानक वर्षा की वे बड़ी-बड़ी बूँदें बन्द हो गई। संगीत थमा, स्वर-लहरी काँपी। वीणा को अलग रख दिया। और मैं अपनी थकी हुई अँगुलियों को दूसरे हाथ से दबाने लगा।

मेरे चारों ओर एक भीड़ इकट्ठी हो गई थी। कोई आनंद से भूम रहा था। कोई मंत्र-मुग्ध-सा खड़ा था। संगीत के थमते ही तुम चौंक उठे। पूछने लगे, "तुमने क्या बजाया?"

मैं क्या उत्तर देता? मैं तो वही बजा रहा था, जो तुम गा रहे थे।

परन्तु तुम्हे किस प्रकार से समझाता?

२२ मार्च १९३०]

कहाँ ?

माँ, मैं धूल में खेल रहा था। अचानक मेरे छोटे-से विश्व में तुम्हारे आगमन का शोर मच उठा। मेरे सब साथी मुझे छोड़ कर भाग गये। मैं न जाने क्यों न जा सका।

माँ, मैं धूल में खेल रहा था जिस समय मेरे छोटे-से विश्व में तुम्हारे आगमन का शोर मच उठा। अपनी छोटी अंगुली से मैं धूल में रेखाएँ खींच रहा था जिस समय मेरे छोटे-से विश्व में तुम्हारे आगमन का शोर मच उठा।

धूल में फैले हुए मेरे प्रासाद में अचानक तुम्हारी छाया पड़ने लगी। मैं चौंक उठा। सिर उठा कर देखा, तो आश्चर्य-चकित रह गया। माँ, मैं धूल में खेल रहा था जब मेरे छोटे-से विश्व में तुम्हारे आगमन का शोर मच उठा!

मैं उठ खड़ा हुआ। अपने दोनों हाथ झाड़ डाले। तुमने मेरे रूखे कपोलों को चूम लिया और गोद में उठा-कर मुझे न जाने कहाँ ले चली? माँ, मैं धूल में खेल रहा था जब मेरे छोटे-से विश्व में तुम्हारे आगमन का शोर मच उठा!

९ मार्च १९३०]

स्मृति-सन्देश

प्रियतम,

वर्षा की झड़ी आरम्भ हो गई है, हलकी मेघमालाएँ आकाश में छितर कर फैल गई हैं।

आज अपने स्नेह-चुम्बनों को फैलाकर आकाश ने पहली बार ही पृथ्वी का आलिंगन किया है।

परन्तु, न जाने क्यों, इन लम्बी-लम्बी बूँदों में मैं प्रियतम के संदेश को खोज रही हूँ।

तुम्हारा और मेरा अन्तर आज और भी दूर सरकता हुआ जान पड़ता है।

तुम क्षितिज के उस सुदूर को भेद कर और भी आगे बढ़ गये हो।

परन्तु, न जाने क्यों, तुम्हारे अञ्चल का स्पर्श आज भी हृदय को कँपा देता है।

२१ अप्रैल १९३०]

निराशा

दिन भर के परिश्रम से थककर मैंने अपना झोला एक ओर फेंक दिया। और एक शान्ति की साँस ली।

संध्या की सोनहरी किरणें दूर-पश्चिमाकाश में विलीन हो रही थीं।

थक कर मैं गिर पड़ा। अचानक अन्धकार की शून्यता अपने पंख चारों ओर फैलाने लगी।

मेरी करुण पुकार उस मोटे परदे को फाड़कर बाहर नहीं जा सकी।

मेरे हृदय की लालसाएँ उस भारी अन्धकार के बोझ से कुचल कर नष्ट हो गईं।

मेरे ईश्वर, क्या तुम्हारी यही इच्छा है कि मैं इसी घने अन्धकार में भटकता फिरूँ?

मेरे दिन भर के परिश्रम का यही मूल्य है कि मै जीवन की भस्म पर मृत्यु का आलिंगन करूँ?

मई १९२०]

रत्न

मेरे पास एक रत्न था। बहुत पुराना। यों ही पड़ा रहता था।

एक दिन मैंने सोचा कि उसे हाट में ले जाकर बेच दूँ।

इसी विचार से मैं उसे हाट में ले गया। और राह-चलते मनुष्यों का ध्यान उसके सौंदर्य की ओर आकर्षित करने लगा।

एक से मैंने कहा, "देखो, कैसा सुन्दर है मेरा रत्न!" सचमुच उस समय उसमें सौंदर्य झलक उठा।

चारों ओर से मनुष्य आकर बड़ी-बड़ी बोलियाँ लगाने लगे। परन्तु मैं उसे किसी के हाथ बेचने को तैयार न हुआ।

अपने उसी पुराने रत्न को लेकर मैं लौट चला।

मार्ग में फिर एक ग्राहक मिला। चिढ़े हुए स्वर में बोला, "इस रत्न का तुम क्या करोगे?"

मैंने मुस्करा कर उत्तर दिया, "सुन्दर तो है!"

मई १९३०]

शीर्षक-हीन !

मैंने उसे स्पर्श किया—चेहरा लज्जा से लाल होगया। किरणों के हलके प्रकाश में उसका भोला सौंदर्य चमकने लगा।

मैंने उसे तोड़ लिया। मेरे हाथ में आकर मानो वह मुस्करा उठा।

मैं उसे छाया में ले आया। मुख मलीन हो गया, दुश्चिन्ता की रेखाएँ दिखाई देने लगीं।

मैं उसे फिर धूप में ले गया—मानों वह फिर मुस्कराने की चेष्टा कर रहा था।

उसके एक साथी के पास ले गया। कितना अन्तर था! मैंने उसे बन्धन-मुक्त किया था। मैंने उसे आतप से बचाया था। पर वह प्रसन्न नहीं था!

कमरे में लाकर मैंने उसे अपनी मेज़ पर रख दिया है। मैं बारबार उसके शोक का कारण पूछता हूँ पर वह अपनी मूक-व्यथा को प्रकट नहीं करता। वह चुप है। केवल एक ऐसी दृष्टि से मेरी ओर देखता है, जिसमें तृष्णा है, करुणा है और अर्थ-शून्यता है।

ज्यों-ज्यों मैं इस कविता को समाप्त करता हूँ, उसकी पंखुड़ियाँ सिकुड़ती है और चेहरा मुरझाता है।

जनवरी १९२०]

स्मृति

बड़े सुन्दर पुष्पों की माला थी ! बड़े चाव से मैंने उसे पहन भी रक्खा था। उसमें प्रकृति का समस्त सौंदर्य भी था और मित्रों के स्नेह की स्मृति भी !

अगले स्टेशन पर उतर कर मैं प्लेटफार्म पर टहलने लगा। बार-बार उस माला को सूँघता था और आनन्द का अनुभव करता था।

अचानक सामने शास्त्रीजी दिखाई दिये। वे शायद मुझे विलासप्रिय समझें—मै चौंक उठा !

गले में हाथ डालकर माला को पीछे की ओर खींचा और उसके डोरे को तोड़ डाला। तब मैंने आगे बढ़ कर शास्त्रीजी को प्रणाम किया।

बड़ी देर तक उनसे बातें हुईं—परन्तु मेरा ध्यान उस टूटी माला की ओर था जो कुछ दूर पर बिखरी पड़ी थी।

ट्रेन ने सीटी दी। वे अपने डिब्बे की ओर दौड़े—मैं उन बिखरे फूलों को बटोरने लगा। जल्दी-जल्दी उन्हें उठाकर रूमाल में रक्खा और अपने डिब्बे में आ बैठा।

ट्रेन चल दी थी। कुछ फूल अब भी उसी स्थान पर पड़े थे। एक क्षण तक मैं उनकी ओर सतृष्ण नेत्रों से देखता रहा। हाय, उन्हें क्यों न बटोर सका!

धीरे-धीरे वे अस्पष्ट और अदृश्य होने लगे। तब मैं अपने स्थान पर आकर बैठ गया।

ट्रेन में ही रात हुई और बिस्तर बिछाकर अपनी बेंच पर मैं सो गया।

ट्रेन में ही सुबह हुई। उस दिन कोहरा था। एक स्टेशन पर उतर कर मैंने हाथ-मुँह धोया। रूमाल की आवश्यकता हुई। देखा कि उसमें फूल बँधे हुए थे।

फूल मुरझा गये थे। मैंने उन्हें उसी स्टेशन पर, जिसका नाम मैं भूल गया हूँ, उसी नल के पास बिखेर दिया।

वर्षों बीत गये पर अब भी उन फूलों की स्मृति ताजी है, जिन्हें मैं किसी स्टेशन पर बटोर नहीं पाया था, और जो दूर होने के कारण अस्पष्ट होते गये थे।

जनवरी १९३०]

माँ

माँ !

यदि नीरवता अपने मौन संगीत से,

शून्य के अनन्त कणों को भर दे।

यदि पत्नी अपने श्रान्त पङ्खों से,

अपने-अपने नीड़ो की ओर उड़ चलें।

यदि कमल सूर्य की अन्तिम किरणों को,

छिपाकर अपनी पंखुड़ियों को बन्द कर ले।

तो तुम अपने काले आञ्चल को फैला कर,

मुझे अपनी गोद में छिपा लेना।

माँ!

यदि धूल के कणों से सनी हुई संध्या,

रजनी के रूप में प्रगाढ़ होने लगे।

यदि दिन-भर के जागने से क्षुब्ध निद्रा,

प्राणियों के पलकों को भारी बना दे।

यदि पुष्प-जगत में उत्साह और उल्लास,

प्यासी वेदना की आड़ में छिप जायें।

तो तुम अपने काले आञ्चल को फैलाकर,

मुझे अपनी गोद में छिपा लेना।

फ़रवरी १९२०]

तेरे दीपक की ज्योति

तेरे दीपक की ज्योति,

मेरे शरीर में अपना प्रकाश फैला दे,

जिससे वह नीरोग और स्वस्थ रहे।

मेरे मन में अपना प्रकाश फैला दे,

जिससे वह शुद्ध और सात्त्विक रहे।

मेरे हृदय में अपना प्रकाश फैला दे,

जिससे वह संवेदन शील और भावुक रहे।

मेरे वचन में अपना प्रकाश फैला दे,

जिससे वह सत्य और कल्याणकर रहे।

मेरे पापो का नाश कर दे और मुझे अपने सोनहले पंखो पर बैठाकर तेरी स्वर्गीय ऊँचाई तक उठा ले जाय।

फरवरी १९२०]

अनुरोध

जिस समय उषा-सुन्दरी अपनी कोमल तूलिका को किरणों के रंग मे डुबाकर पूर्वीय आकाश को पोतने लगे और प्राची का अन्तिम तारा अपनी झिलमिलाती हुई मुस्कराहट को छिपाकर अस्पष्ट हो जाये, तुम स्वप्न बनकर मेरी नींद में प्रवेश करना।

जिस समय रजनी पीली पड़ जाय, वृक्ष जाग उठें, पत्तियाँ नवजीवन की मदिरा पीकर चर्र-मर्र कर उठें और पक्षी अपने निद्रालस मुखों को खोलकर गाने लगें, तुम प्रभात बनकर मेरी जागृति में प्रवेश करना।

फरवरी १९३०]

चुम्बन !

वर्षा की उन कभी समाप्त न होनेवाली लम्बी-लम्बी बूँदों में घड़ियाँ पिघल-पिघल कर नष्ट हो रही थीं। वृक्ष भीगे खड़े थे, और वायु के झोंके खाकर बरस पड़ते थे।

अपने छोटे दीपक के तुच्छ प्रकाश में बैठी हुई पुष्पों को चुन-चुनकर मैं तुम्हारे लिए माला गूँथ रही थी।

टलमल-टलमल वेग से बहनेवाले निर्झरों की मधुर लोरियों के आवेश को मेरे भोले पलक रोक नहीं सके।

तुम्हारे पैरों की चाप के संगीत ने मेरे स्वप्नों को गुँजा दिया परन्तु उनकी स्नेह-शिथिल बाहुओं को मैं अपने गले से हटा नहीं सकी।

अचानक ही तुम्हारे चुम्बन का स्पर्श मेरे रोम-रोम में फैल गया। मैं चौंक उठी।

अपने छोटे दीपक के तुच्छ प्रकाश में, कुटीर के बाहर निकलकर, मैंने भीगी मिट्टी पर तुम्हारे चरणों के चिन्ह देखे।

मैंने अपनी माला को तोड़ डाला और फूलों से तुम्हारे पद-चिन्हों को छिपा दिया।

परन्तु तुम्हारे इस चुम्बन का मैं क्या करूँ ? इसका स्पर्श तो मेरे रोम-रोम में फैल गया है।

फरवरी १९२०]

बृहद् आयोजन

तुम उस समय नहीं आये जब मैं तुम्हारे स्वागत के लिए तैयार बैठा था। तुम उस समय आये जब मै तुम्हारे स्वागत के लिए तैयार नहीं था !

अचानक तुम द्वार पर आकर खड़े हो गये।

मै घबरा उठा। तुम्हारे चरणों का स्पर्श कर मैंने कहा, "देव, इस समय में तुम्हारी किस प्रकार से पूजा करूँ ? मैं केवल अपने जीवन की अञ्जलि तुम्हारे कर-कमलों में दे सकूँगा।"

तुम मुस्कराने लगे। बोले, 'क्या इससे भी अधिक कुछ दे सकते थे ?'

मेरा मुख लाल हो गया। सोचा, "सचमुच, क्या इससे भी अधिक कुछ दे सकता था ?"

तब से अपने उस बृहद् आयोजन की बात सुनकर मैं हँस देता हूँ।

फ़रवरी १९३०]

निरादर

मैं तुम्हें नवप्रभात के वैभव-विहार मे ढूँढ़ता था परन्तु तुम मध्यान्ह की प्रखर दोपहरी में मिले।

मै तुम्हें संध्या के झुरमुट प्रकाश में ढूँढ़ता था परन्तु तुम अर्ध-रात्रि की नीरव गोद में मिले।

मै तुम्हें नरेशो के ऊँचे प्रासाद में ढूँढ़ता था परन्तु तुम निर्धनों की टूटी झोंपड़ी में मिले।

मै तुम्हें वीरों के समरक्षेत्र में ढूँढ़ता था परन्तु तुम कवियों की कोमल कल्पना में मिले।

तुमने सदा ही मेरी आशाओं को ठुकराया और मेरी प्रतीक्षा का उपहास किया!

फरवरी १९३०]

नक्षत्र

उस दिन, नक्षत्रों से भरे हुए आकाश की ओर अनि-मेष नेत्रों से देखते हुए मुझे ऐसा जान पड़ा मानो मैं युगों से उसी स्थान पर बैठा हूँ।

बाल्य-जीवन की भोली स्मृतियाँ अपने मनोहर पंख फैलाकर आकाश में तैरने लगीं। मानो मेरे अतीत और भविष्य के सब स्वप्न एक साथ ही अपलक आकाश में झिलमिला उठे।

यौवन के नव-प्रभात के शतदल अपने अनुभव-शून्य विस्मय को प्रकट कर रहे थे।

मुझे आश्चर्य हुआ कि अपने सहस्रश: नेत्रों को फाड़-फाड़ कर आकाश पृथ्वी के इस छोटे टुकड़े पर क्या देख रहा था।

मुझे ऐसा जान पड़ा कि नक्षत्रों के बीच का शून्य स्थल अपना नीरव आह्वान मेरे ऊपर बिखेर रहा है।

कैसी इच्छा होती थी कि किसी प्रकार से भी उस दिव्य-लोक में पहुँच जाऊँ। स्वच्छ, सुन्दर और प्रशस्त !!!

कुछ ऐसा भी विश्वास हुआ कि मेरा कोई परिचित नक्षत्र न जाने कितने काल से मेरी प्रतीक्षा कर रहा है।

विस्मय और आह्लाद से मैंने अपने नेत्र बन्द कर लिये। मेरे स्वप्न-लोक में अगणित आकाश भर गये जिनमें असंख्य तारे झिलमिला रहे थे।

न जानें किन अज्ञात करों ने कब और कैसे मेरे उस सौंदर्य को लूट लिया।

नवजीवन से अनुप्राणित प्रभात के समीर ने अपने स्पर्श से मेरे नेत्रों को खोल दिया। अपने ही सौंदर्य से क्षुब्ध होकर आकाश ने अपने पलक बन्द कर लिये थे।

पलक की दोनों कोरों के बीच में, लम्बे-लम्बे रोमों में केवल एक तारा अटका हुआ था। अचानक वह भी छिप गया। उसी समय केले के चौड़े पत्तों पर से ओस की कुछ बूँदें ढुलक कर पृथ्वी पर गिर पड़ीं।

मार्च १९३०]

प्रार्थना

मैं प्रार्थना नहीं करता कि मेरे पापों को क्षमा कर दे, परन्तु उन्हें जीत सकने की मुझे शक्ति दे।

मैं प्रार्थना नहीं करता कि जीवन के संग्राम में मैं विश्राम पा जाऊँ, परन्तु उसके विविध तूफानों को वश में करने की मुझे शक्ति दे।

मैं प्रार्थना नहीं करता कि संसार के आकर्षण मुझे अपनी ओर खींच न सकें परन्तु उन क्षुद्र आकर्षणों पर विजय प्राप्त करने की मुझे शक्ति दे।

ओ सकल संसार के न्यायाधीश, मेरे पापों के लिए अपने दण्ड-विधान का कठोर-से-कठोर दण्ड दे, और मैं क्षमा माँगने के लिए अपना मस्तक नहीं झुकाऊँ, मेरे माथे पर झुर्रियाँ नहीं पड़ें, मेरे नेत्र नहीं झपकें।

मैं केवल विजय में ही तेरी कृपा का अनुभव न करूँ, परन्तु पराजय में भी तेरे स्पर्श में विश्वास रक्खूँ।

मैं प्रार्थना नहीं करता कि मैं अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकूँ, परन्तु अपनी साधना में मुझे विश्वास रहे।

सतसङ्ग

मै प्रार्थना नहीं करता कि मेरे जीवन में वेदना के बादल नहीं मँडराएँ, परन्तु उसकी भीषण-से-भीषण झड़ी में मै निर्भय खड़ा रहूँ। मेरे अंगों से वर्षा के पनाले छूट जायँ परन्तु मुस्कराते हुए मेघ-शून्य आकाश में मुझे विश्वास रहे।

मै प्रार्थना नहीं करता कि मेरे नेत्रों में अनागत निराशा के आँसू छलछला नहीं उठें, परन्तु उन आँसुओं के वेग में अपने अविचल धैर्य में मुझे विश्वास रहे।

ओ समस्त विश्व में परिव्याप्त महाशक्ति, मेरे सोनहले लक्ष्य को तू अगम्य और अलभ बना दे, परन्तु अपनी महा-यात्रा के पवित्र यज्ञ में मै निराश नहीं होऊँ, झिझकूँ नहीं और अपना बोझ किसी दूसरे के कन्धे पर न पटक दूँ।

मै केवल अपने फल की प्राप्ति से ही प्रसन्न न होऊँ, परन्तु पुष्प की संक्रमण-पीड़ा में भी आनन्द का अनुभव कर सकूँ।

मुझे तू मध्य-रात्रि का अन्धकार दे, जिससे मैं उषा की मृदु-लाली को समझ सकूँ।

मुझे तू आँसू दे, वेदना दे, और पीड़ा दे, जिससे मैं आनन्द का अनुभव कर सकूँ।

मार्च १९२०]

एक प्रश्न

मेघमालाएँ मेरे आकाश में घिरती आ रही हैं—एक के बाद एक—एक के ऊपर एक—घनी और विषादमय। समीर के लहराते हुए अञ्चल का एक हलका-सा स्पर्श, और वे बरस पड़ेंगी।

मेरी इच्छा होती है कि तुम्हारे विराट संगीत में अपनी भी तान जोड़ दूँ, परन्तु गाने के लिए शब्द नहीं मिलते, मेरा हृदय शून्य से भर जाता है और अस्पष्ट संगीत उसके एक छोर से दूसरे छोर तक गूँज उठता है, जो मेरे शब्दों को धोखा देकर सदा ही अलग हट जाता है।

वसन्त अधखिली कलियों की माला लेकर मेरे द्वार पर आया है परन्तु अभी पतझड़ भी समाप्त नहीं हुआ। नवजीवन से युक्त वृक्षों पर पीले और मुरझाये पत्ते लदे हैं, मानों प्रभात ने रजनी का अञ्चल पकड़ रक्खा है, मानों हमारे होनहार प्राचीनता के सड़ेगले विचारों के छोड़ने में संकोच कर रहे हैं।

संभव है, समीर के लहराते हुए अञ्चल के एक हलके से स्पर्श से वे बरस पड़ें, गूँज उठें और झड़ जायँ। परन्तु, रहने दो मेरे ये छूँछे बादल, न गाया हुआ संगीत और स्वागतशून्य वसन्त! यदि मेरे जीवन में वे प्रवेश कर लेंगे तो इस प्रकार उत्सुक-हृदय से मैं किसकी प्रतीक्षा करूँगा?

मार्च १९३०।

आश

मेरी प्रसन्नता इसी में है कि मैं मार्ग के किनारे अपनी फूलों की डलिया लिए तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहूँ ।

क्या चिन्ता है यदि मेरे फूल मुरझा जायँ, और संध्या की सोहाग-लाली काली पड़ने लगे ।

स्मृतियों के धुन्धले लोक में मुझे तुम्हारे चरणों की चाप सुनाई पड़ रही है ।

मेरी प्रसन्नता इसी में है कि मैं मार्ग के किनारे अपनी फूलों की डलिया लिए तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहूँ ।

\+ \+ \+

प्रतीक्षा से भीगी हुई मेरी आँखों में स्वप्न तैरने लगे । और अचानक तुमने प्रवेश किया । कहने लगे, "बाले, तू क्या चाहती है ?"

"मैं नहीं जानती", मैं चिल्ला उठी। अपने मुरझाये हुए फूलों से किस प्रकार तुम्हारी अर्चना करूँ?

\+ \+ \+

मेरी डलिया में से मेरे फूल लेकर तुमने मेरे ऊपर ही बिखर दिये।

मैं चौंक उठी। तारों के नीरव प्रकाश में मैंने देखा कि मेरे चारों ओर फूल बिखरे हुए थे।

मैं आश्चर्य करने लगी कि सचमुच यदि तुम आ जाओ तो अपने बिखरे हुए फूलों से किस प्रकार तुम्हारी अर्चना करूँ?

मैं तो केवल यही जानती हूँ कि मार्ग के किनारे अपनी खाली डलिया लिए तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहूँ।

मार्च १९३०]

व्यर्थ ?

गाँव का दढ़ियल फेरीवाला सिर पर बचे हुए सामान को लेकर घर लौट चला है।

कारीगरों ने अपने औज़ार समेट लिये है।

पक्षियों के दल-के-दल घोंसलों की ओर उड़े जा रहे हैं।

क्या अकेला मैं ही अपना झोला उठा कर न जाने किस अपरचित देश की ओर चल पड़ा हूँ ?

नहीं, आकाश के बिखरे हुए ये तारे भी तो व्यर्थ ही मुस्करा रहे हैं !

फ़रवरी १९३०]

मैं फिर आऊँगा !

संध्या की उतरती हुई किरणों में रक्त की वे बूँदें चमक उठीं जो क्रूस पर चढ़े हुए ईसा के दोनों हाथों से बह रही थीं।

गहरी व्यथा और हलकी मुस्कराहट के एक अद्भुत सम्मिश्रण में उसका तेजोमय वदन अस्त होते हुए सूर्य से भी अधिक सुन्दर दिखाई दे रहा था।

उसके अनुयायियों के हृदय में वेदना थी, और आँखों में आँसू।

माता मरियम ने दौड़ कर क्रूस को चूम लिया, और एक कष्ट-भरी दृष्टि से अपने पुत्र की ओर देखा। ईसा मुस्कराया, "माँ, अपने इन अमूल्य आँसुओं को यों मत बहने दो। मैं फिर आऊँगा!"

सूर्य की किरणें हलकी पड़ रही थीं, परन्तु आशा की किरणें चमक उठीं। विरोधियों ने उपेक्षा की, "बकता है!"

जोसेफ़ ने आगे बढ़ कर अपने प्याले में रक्त की वे बूँदें एकत्र कीं—आज भी उस प्याले की खोज में संसार इतस्ततः भटक रहा है।

सूर्य के अस्त होते ही जनता लौट चली। कुमारी मरियम के थके हुए पैरों को केवल ये शब्द आगे खदेड़ते रहे, "मैं फिर आऊँगा।"

जल्लाद भी अपना सामान समेट कर चल पड़ा। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। और मुँह से धीमे स्वर में ये शब्द, "मैं फिर आऊँगा।"

परन्तु, ओ बावली दुनियाँ, क्या तूने यह नहीं समझा कि सूर्य के अस्त होते ही उसके प्राण लौट आये थे। पहले वह एक शरीर की सीमा में बँधा था। बाद में उन छोटे गुरड की मुस्कराहट और उन निर्जन आँसुओं में।

६ मई १९३०]

भाग्य !

उनकी डोंगी सदा लहरों में ही तैरा करती थी। न कोई मल्लाह थे, न कोई पथ-प्रदर्शक। केवल कुछ मुर्दा संकेत थे, जिनकी अवहेलना करने का उनका स्वभाव ही पड़ गया था।

लहरों के थपेड़े खाती हुई एक दिन वह डोंगी तूफान में जा फँसी। बड़े जोर का तूफ़ान था। लहरें ऊपर उछल रही थीं। काला महासागर मृत्युमय हो रहा था।

चारों ओर कुहरा था। उनके हृदय में भी। वे कुछ नहीं जानते थे। केवल एक खलबली-सी मची हुई थी।

बिना सोचे-समझे वे सब एक स्थान पर एकत्र हो गये
और प्रार्थना करने लगे, "हे ईश्वर, ऐसी आपत्ति के समय
हमें एक मल्लाह की आवश्यकता है।"

अचानक एक कोने का कुहरा कुछ खुला। और कुछ
जीर्ण संकेत-चिन्ह चमक उठे। एक क्षण में फिर अंधकार
हो गया।

और वे सब अपने हृदय की सारी शक्ति लगा-
कर प्रार्थना करते रहे, "हे ईश्वर, ऐसी आपत्ति के समय
हमें एक मल्लाह की आवश्यकता है।"

दूसरे कोने का कुहरा खुला। एक मूर्ति, निश्चल,
निश्चेष्ट और नैसर्गिक, खड़ी थी। उनमें से कुछ ने उसे
देखा। वे चिल्ला उठे, "यह शैतान की लीला है।" और
उस मूर्ति को हाथ-पैर बाँध कर एक ओर पटक दिया।

फिर भी, वे सब मूर्ख नौका के एक कोने में खड़े हुए
चीख-चीख कर प्रार्थना कर रहे थे, "हे ईश्वर, ऐसी आपत्ति
के समय हमें एक मल्लाह की आवश्यकता है!"

६ मई १९२०]

परिचय ?

कौन हो तुम, जो मेरा परिचय पूछते हो ? मैं तो पगला हूँ। आज माँ के अपमान का बदला लेने निकला हूँ।

वे पाशविक रोमाञ्चकारी क्रूरताएँ ! मेरा हृदय उन्हें नहीं सह सका। आज आवेश से मेरे नेत्र लाल हो रहे हैं। मेरी रगें फड़क रही हैं। नस-नस में आज प्रतिशोध की भावना जाग उठी है।

हँसते क्यों हो ? दुर्बल हाड़-माँस और इस टूटी झंझरी को लेकर मैं शत्रुओं से लड़ सकूँगा ? पगला ही तो ठहरा !

मेरा शत्रु ही कौन है, मैं तो सबसे प्रेम करता हूँ। परन्तु, माँ की उन करुण आँखों की प्यास बुझाने के लिए आज मैं उनका सर्वनाश करने निकला हूँ।

वेदना और व्यथा के झोंके खा-खा कर मेरा आत्म-सम्मान जाग उठा है। किन्तु यंत्रणाओं की राक्षसी मार से मैं अपने-आपको भूल-सा गया हूँ।

मैं अपना परिचय तुम्हें क्या दूँ? मेरे हृदय में एक ज्वालामुखी धधक उठा है। उसकी सर्वतोमुखी लपटें आज मुझे भस्म किये दे रही हैं।

मेरे हृदय से एक दर्द-भरी चीख निकलती है उसीको छिपाने के लिए मैं द्वार-द्वार पर क्रांति के ये गीत गाता फिरता हूँ।

मेरे तुम, और क्या परिचय दूँ?

२३ मई १९२०]

स्वागत

(१)

स्वागत, ऐ भोले बचपन ! प्राणों के पुण्य-प्रत्यूष !!

जीवन के प्रथम प्रभात को एक रहस्यमयी मादकता से आलोकित कर देने वाले शैशव, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। आओ, मेरे इन धूलि में भरे हुए कुसुम-कोमल कपोलों पर अपने आगमन का चुम्बन अङ्कित कर दो ! आओ, मैं अपनी तोतली बोली से तुम्हारा स्वागत करूँगा ! जीवन के ये दिन ! आह, क्रीड़ा, कौतूहल और आनन्द से सने हुए, जब कि अज्ञान भी मीठा और सुन्दर दिखाई देता है। काल और विस्तार की सीमाएँ अनन्त और असीम हैं— इन्द्र धनुष के पीछे दौड़ने की कैसी इच्छा होती है !—वह चमकता हुआ रंगबिरंगा इन्द्र-धनुष ?—क्या श्रीराम के पास इससे भी सुन्दर धनुष होगा ? और, क्षितिज को छूने की वह आकाँक्षा ! किस प्रकार सूर्य उसके नीचे से उदय होता है, और उसी के नीचे अस्त हो जाता है। विश्व का

घेरा डाल कर यह कैसा अद्भुत चक्र पड़ा हुआ है—मेघों की अवलियाँ एक-एक करके इसके नीचे से निकलती हैं और आकाश में छा जाती हैं—मानों तितली अपने पंख फैलाकर उड़ने लगी हो। और वर्षा की वह कल्पना—संसार में जल ही-जल भरा होगा—मनुष्य उसमें इधर-से उधर तैर रहे होंगे! ये क्षुद्र सीमाएँ भी कितनी महान् जान पड़ती हैं। और भगवान् की कल्पना—वह कहाँ रहता होगा-कितने हाथ-पैर और कान हैं उसके! कितना विशाल चेहरा होगा, और शायद एक लहराती हुई लम्बी दाढ़ी। बादलों के पीछे छिपा बैठा होगा। वैज्ञानिकों की समझ में न आनेवाले सिद्धान्त भी कितनी जल्दी सुलझाये जा सकते हैं—यह हमारी शैशव-बुद्धि से पूछो। सूर्य और चन्द्रमा भाई-भाई थे—इनमें आपस में क्या हुआ था—और सब के ऊपर चढ़ा हुआ 'रहस्य' का सुनहरा मुलम्मा!

ओ नूतनता से ओतप्रोत जीवन। के स्वर्ण-विहान, तुम्हारा स्वागत है!

(२)

स्वागत, ऐ उन्मत्त यौवन! जीवन के स्वर्ण-द्वार!!

शैशव की भोली कली को अपने निर्दय हाथों से खोल कर उसे सुमन का रूप देनेवाले यौवन, मैं तुम्हारा स्वागत

करता हूँ। आओ, अज्ञान के इस रहस्यमय परदे को फाड़ फेंको! आओ, ज्ञान के पवित्र प्रकाश को मेरे झुके हुए चेहरे पर बिखेर दो! यौवन की ये उद्दाम वासनाएँ! ये पार्थिव और नारकीय आकर्षण! यह पतन का खुला हुआ राजमार्ग! मैं इन सब का स्वागत करता हूँ। इनके भीतर जो महाशक्ति छिपी हुई है, मैं उसका सदुपयोग करूँगा। वासना के ताण्डव में मैं नाचूँगा, परन्तु उन्मत्त होकर नहीं—इस पागल घोड़े को मैं अपनी सवारी के लिए तैयार करूँगा। आनन्द मिलता है, दुष्टता के इन आघातों में भी सिर ऊँचा रखने में! मज़ा आता है, आकर्षणों की चपेट को मुस्कराते हुए ठेल देने में!

ओ प्रयोगों की सुन्दर अभिनवशाला, चिरवाञ्छित प्यारे यौवन, तुम्हारा स्वागत है!

(३)

स्वागत, ऐ प्यारे जीवन! मेरे प्राणप्यारे जीवन!!

एक छोटी-सी निश्चेष्ट वस्तु में महाशक्ति का आह्वान करनेवाले जीवन, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। आओ, इस सोये हुए नैराश्य से मुझे एक जीवित शक्ति में जाग्रत कर दो! आओ, मेरे इन मुर्दा हाथों में विश्व को उलट देने की शक्ति दो! जीवन की वह सुनहरी आभा किस प्रकार अपने प्रिय पात्रों को एक निराले रंग से रंग देती

है। जिसने इसकी मदिरा पी, वही मस्त हो गया। परन्तु ऐ आकर्षक वियोग—तुम वियोग के रूप में ही मेरे सामने आओ, और उसी में आकर्षण पैदा करो। तुम्हारे आकर्षण में मेरा वियोग न छिप जाय! एक यही तो जीवन की अमूल्य निधि है, मेरे सर्वस्व! हर्ष से उछलकर फूट निकलने वाला अट्टहास, और वेदना से आतुर होकर चीखने वाला विलाप, तारों की प्रशान्त उत्सुक दृष्टि, और मेघों की गड़गड़ाहट, वर्षा की वे लम्बी-लम्बी कातर बूँदें—सब इसी प्यारे वियोग को ही छिपाये बैठी हैं। वियोग रहे, और मिलने की आकांक्षा रहे, वेदना में मुस्कराहट हो। बस!

ओ पूर्णत्व की अपूर्व आभा, ओ महत्त्व-पूर्ण आकर्षण, तुम्हारा स्वागत है!

(४)

स्वागत, ऐ जीवन के अनन्य सखे! ऐ चिर-आकर्षण!!

विश्व की रंगभूमि पर पड़नेवाले अन्तिम परदे के समान ऐ मृत्यु, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। आओ, अंधकार और अज्ञात को अपने अञ्चल में छिपाकर लाने-वाली मृत्यु! आओ, ज्ञान के ऊपर रहस्य का पटाक्षेप करनेवाली मृत्यु—ऐ पूर्व-स्मृतियों की पुनरागत मूर्त्ति! वह दृश्य—विश्वोदधि के ऊपर तैरनेवाली छोटी-सी नौका के

टुकड़े-टुकड़े हो जाना—झंझावात के झोंकों में आकर—और फिर अस्त हो जाना पूर्णत्व की गहराई में ! अपूर्ण के ऊपर पूर्ण की छाप, आओ ! सूर्य के अस्त होते ही संसार समाप्त नहीं हो जाता—एक काली चादर बिछ जाती है—जिसमें तारे झिलमिलाते हैं—महासागर की लहरों के बीच में भी ! आओ मृत्यु, तुम्हारे चरणों में मैं जीवन की अञ्जलि चढ़ाऊँगा। आओ मृत्यु, जिस प्रियतम को मैं सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश मे नहीं देख सका हूँ, उसे तारों के झिलमिलाते हुए नीरव रहस्य मे ढूँढूँगा।

ओ, जीवन की अन्तिम स्मृति, तुम्हारा स्वागत है।

२७ जून १९३०]

ये चित्र !

अन्यमनस्क होकर मैंने तेरी इस विशाल चित्रशाला में अपनी अनुभवशून्य तूलिका से चित्रपट को रँगना आरम्भ कर दिया।

कौन जाने कितने चित्र बन पाये और कितने बिगड़ गये ?

मेरे हृदय में भाव नहीं थे, परन्तु तेरी आज्ञा का पालन करने की लालसा थी।

मेरी तूलिका चित्रपट पर थी, परन्तु मेरा मन धूल के कणों में छटपटा रहा था।

कौन जाने कब प्रभात की सन्ध्या हुई, और कब संध्या का उदय। मैं तो अपनी तूलिका को रंग की प्यालियों में डुबाकर चित्रपट पर फेर रहा था।

चित्रपट पर कभी भूल में बने हुए प्रासाद खिंच जाते थे, कभी भविष्य की अस्पष्ट छाया फैल जाती थी। परन्तु मेरा हृदय न जाने कहाँ भटक रहा था?

संध्या के उतरते ही तुमने चित्रशाला में प्रवेश किया। मैंने अपने सब विफल प्रयत्न तुम्हारे सामने फेंक दिये। कहा, "माँ, मुझसे यह काम नहीं हो सकेगा।"

तुम मुस्कराने लगीं। संध्या की सोनहली किरणें तुम्हारे मुख पर पड़ रही थीं। तुम्हारी मुस्कराहट मेरे चित्र में फैल गई।

अभी चित्र गीले हैं। जब सूख जायँ, तुम अपनी चित्रशाला में टाँग देना।

मार्च १९३०]

विदा

विश्व के विषादमय वदन पर संध्या की घनी अलकें बिखरती जा रही हैं, जिनके पीछे सूर्य छिप गया है।

श्रान्त संसार के ऊपर संध्या अपने शान्तिमय पंखों को फैलाये बैठी है।

मेरे जाने का समय होगया। माँ, अब मुझे विदा दो।

तुम्हारी चित्रशाला में मैंने बहुत अनिष्ट किया। कितनी प्यालियाँ फोड़ डालीं। कितने चित्र बिगाड़ दिये।

आज मेरी आत्म-श्लाघा तुम्हारी कृतज्ञता के बोझ से दबकर सिकुड़ गई है।

मेरे अपराधों को क्षमा करो। माँ, अब मुझे विदा दो।

मार्च १९२०]

प्रणाम

श्रद्धा और प्रेम के भार से मेरी आत्मा तुम्हारे चरणों में झुकी जाती है। परमेश्वर, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

विश्व की करुणा का स्पर्श कर मेरे पलक भींग गये हैं। तुमने मुझे अपने वास्तविक रूप को समझने दिया। परमेश्वर, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

तुम्हारे चरणों में मेरी यही प्रार्थना है कि तुम संसार को अनुभूति और हृदय की अन्तिम गहराई तक ले जाओ जिससे वह सच्चे आनन्द का अनुभव कर सके।

तुमने मुझे अपने अक्षय घट में से सुधा की एक बूँद पीने की आज्ञा दी। परमेश्वर, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

मार्च १९३०]

पतझड़

१६३१]

धुंधले प्रकाश में—

मै प्रतीक्षा कर रही हूँ, तुम्हारे चरणों मे अपना सब कुछ खो देने की !

वे मेरी इच्छाओं की ज्वाला के चारों ओर चक्कर लगाते हैं।

संध्या कितनी सूनी और उदास दिखाई देती है !

वे वासनाओं का तूफान लाकर खड़ा कर देते है—वे महान् आत्माएँ—वे मुझे अपने पुष्प दे देते हैं।

मुझे उनकी टूटी हुई पंखड़ियों से क्या काम, जब कि मेरे पास तुम्हारा प्रेम है।

मैं उन फूलों को धूल मे फेंक देती हूँ।

+ + +

मेरे इस छोटे-से हृदय में आँधी टूट पड़ी है,

एक प्रबल क्रुद्ध तूफान !

एक गहरी आकांक्षा मेरे अंगों में कम्पन उत्पन्न कर

रही है, एक धुँधली-सी इच्छा, अपने शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालने की, मेरे स्वामी, और उन्हें तुम्हारी अनुकम्पा में नष्ट कर डालने की,

एक भावना, अपना सब कुछ खो देने की ।

+ + +

मैं प्रतीक्षा कर रही हूँ ।

संध्या पृथ्वी पर उतर आई है ।

संध्या मेरे हृदय में घुस पड़ी है—

उदास, शान्त, निस्तब्ध संध्या ।

+ + +

मेरा दीपक बुझा जा रहा है ।

वायु के प्रत्येक झोंके से मैं किस प्रकार इसकी रक्षा कर सकूँगी ?

प्रत्येक वासना से ?

दुर्भाग्य के प्रत्येक आक्रमण से ?

+ + +

मेरी आशाएँ नष्ट हो गई हैं,

मेरी इच्छाएँ भस्म,

मेरे आँसू सूख गये हैं,

और, मैं प्रतीक्षा कर रही हूँ, तुम्हारे चरणों में अपना सर्वस्व खो देने को ।

+ + +

चित्रपट

जीवन और प्रकाश की इस बाढ़ के सामने मैंने अपनी आँखें बन्द कर ली है।

\+ \+ \+

मैं दूर की वस्तुओं के लिए प्यासी हूँ,

धुंधले, सुदूर, क्षितिज का कोई अज्ञात छोर छूना चाहती हूँ।

मैं एक पागल के समान दौड़ रही हूँ।

मैं नहीं जानती कि मैं अपने मार्ग पर कितना आगे आ गई हूँ।

जब मैं मार्ग के किनारे देखना चाहती हूँ, ये मेरे आँसू कोहरे का एक संसार मेरे सामने ला खड़ा करते हैं।

\+ \+ \+

क्या तुम आ गये ?

\+ \+ \+

बहती हुई वायु में मुझे तुम्हारी उपस्थिति का अनुभव होता है,

अपने मस्तक पर तुम्हारे स्पर्श का,

अपने हृदय में तुम्हारी शीतल आशीषों का।

\+ \+ \+

क्या तुम आ गये ?

ओ धोखा देने की कला मे विशिष्ट निपुण !

क्या तुम आगये !

ओ मेरे विश्व के अन्तिम विधाता ?

क्या तुम आगये,

ओ, जिसके लिए मैं प्रतीक्षा करती हूँ ?

+ + +

रात अंधेरी है,

मेघ घिरे हुए हैं,

और, मैं इतनी अशक्त हो गई हूँ कि दूसरे आघात का बोझा नहीं सह सकूँगी।

मैं अपनी आँखें इसी भय से नहीं खोलती कि शायद तुम्हें न देख सकूँ।

मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ, तुम्हारे चरणों में अपना सब कुछ खो देने की !

उलझन में—

(एक अपूर्ण चित्र)

जीवन में एक बार—

यह आकाश टूट पड़े, संघर्षण की चपेट में आकर तारिकाएँ चूर चर हो जायँ, पृथ्वी भभक उठे।

एक प्रबल मसोस-सी जो उठती है! हृदय न जाने क्या चाहता है! प्रलयंकर की इस महाक्रीड़ा से शायद उसकी प्यास बुझे!

जीवन में बस एक बार!

× × ×

जीवन में एक बार,

प्रियतम से गूढ़ आलिंगन हो । लोक-परलोक की चिन्ता बह जाय । पृथ्वी के किनारे अज्ञात की लहरों में नष्ट हो जायँ । आकाश और पाताल प्रभात के स्वप्न के समान विलीन हो जायँ । केवल दो आत्माएँ, भावनाओं में बँधी हुई !

हृदय में एक हिलोर-सी उठती है । कौन जाने, यह कैसी आकांक्षा है, किससे मिलने को उमंगें लहराती हैं— वह वधू है, या बहिन, या ईश्वर ?…………………

ओ मधुर प्रकाश !

ओ मधुर प्रकाश,

मार्ग बता !

मानवता आज सँकरी पगडंडियों के अंधकार में भटक रही है।

उसके मार्ग पर अपनी पवित्र किरणों के प्रवाह को बहने दे।

तेरी झुकी हुई गहरी भौंहों पर विश्व की वेदना, पीड़ा और संक्रान्ति के काले बादल छाये हुए हैं !

परन्तु, तेरी चमकती हुई आँखें भविष्य के सुनहरे राजमार्ग की ओर देख रही हैं।

उन्होंने आज तुझे काँटों का मुकुट पहना कर क्रूस पर चढ़ा रक्खा है, परन्तु कल वे ही तुम्हारे रक्त की बूंदों के लिए भटकते फिरेंगे।

ओ नवयुग के मसीहा, स्वतंत्रता और मनुष्यत्व की प्यासी मानवता को अपने मीठे प्रकाश में जागृत कर!

ओ मधुर प्रकाश,

मार्ग बता!

यरवदा की उन मुर्दा दीवारों से फूट कर, तेरी ज्योति मेरे धुँधले पथ पर चमक उठे!

सुन्दर !

सुन्दर,

कौन हो तुम ?

जो अचानक स्पर्श कर हृदय को कँपा देते हो ?

तुम्हें देखा किसने है ?

कल्पना के स्वप्न-लोक से खींच कर तुम्हें इस पृथ्वी पर कौन ला सका है ?

परन्तु, फिर भी तुम सारे संसार की अन्तिम आकांक्षा क्यों हो ?

हे अज्ञात,

इच्छा होती है कि अपना शरीर, अपनी आत्मा, अपना सब कुछ चूर-चूर करके तुम्हारे चरणों में बिखेर दूँ, परन्तु अपने अस्तित्व का मोह सदा ही मेरी इच्छाओं का नियंत्रण कर देता है,

प्रार्थना है,

तुम्हारे और मेरे बीच बहने वाली स्नेह की इस धारा में स्नान कर मैं अधिक पवित्र हो सकूँ।

तुमसे मैं कुछ नहीं चाहता,

केवल यही कि दिन-रात तुम्हारी ओर देखा करूँ, जिससे स्वयं मैं सुन्दर बन सकूँ।

संकोच

भावनाओं का एक तूफ़ान-सा उठा था। उसी आवेश में आकर मैं गाने लगा! इसमें मेरा स्वार्थ कौन-सा था?

मैं क्या जानता था कि मेरे ये गीत अपने छोटे-छोटे पंखों पर उड़ते हुए तुम्हारे पास तक जा पहुँचेंगे।

मैं गाना कहाँ जानता था, परन्तु तुम्हारे स्पर्श के तूफ़ान में आकर ही मैं पागल हो उठा, और अपनी टूटी खंजड़ी पर अलापने लगा।

मेरी तानें फैल गई थीं, मेरी आवाज़ के टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे, परन्तु मैं इसकी चिन्ता क्यों करूँ?

मुझे संतोष तो इस बात का है कि मेरी ये छोटी-छोटी कड़ियाँ तुम्हारे चरणों तक पहुँच सकीं।

आज जब आवेश की आँधी समाप्त हो चुकी है, चित्रों की अन्तिम रेखाएँ पूरी हो गई हैं, मुझे तुम्हारा ही चित्रपट तुम्हारे हाथों सौंपने में संकोच हो रहा है।

वर्षों बाद—

ऐ परिचित-से बटोही,—आज वर्षों बाद तुम फिर मिले हो।

अपनी इस धुँधली यात्रा में, एक दूसरे से अलग होकर, हम न जाने कितने समय तक भटकते रहे।

आज वर्षों बाद इस हलके अंधकार को चीर कर तुम्हारे मुख का अस्पष्ट-सा आभास वास्तविक होता गया है।

मेरे प्रकाशहीन पथप्रदर्शक, ऐ परिचित-से बटोही, आज वर्षों बाद हम फिर मिले हैं!

सौ

आज वर्षों बाद तुम्हारी आँखों के गरम आँसू मेरे रूखे कपोलों पर टपके हैं।

आज बाहु-से-बाहु, कण्ठ-से-कण्ठ और हृदय-से-हृदय अलग न होने पावें।

हमारे चारों ओर का धुँधला प्रकाश प्रगाढ़ हो चले। अथवा दिवस की उज्वल-किरणों में वह निकले, इसकी हमें क्या चिन्ता!

ऐ परिचित-से बटोही—ओ अंगों में उल्लास भर देने वाले अज्ञात—आज वर्षों बाद तुम फिर मिले हो।

आज बाहु-से-बाहु, कण्ठ-से-कण्ठ, और हृदय-से-हृदय अलग न होने पावें।

धृष्टता—

मैं बुद्ध, क्राइस्ट और गाँधी की श्रेणी में स्थान पा सकूँ, यह मेरी इच्छा नहीं है !

अपने इस भभकते हुए क्षुद्र दीपक के अन्धकार में स्वयं मैं ही ठोकरें खाता फिरता हूँ—और मैं यह आकांक्षा करूँ कि तूने मेरे हाथों में अपनी महान् मशाल दे दी है, जिसके प्रकाश में मैं मानवता को मार्ग बता सकूँगा ! इससे बढ़कर धृष्टता क्या होगी ?

अपने उथले मनोवेगों की छिछली तरंगों से मैं संसार को सिक्त कर देना चाहता हूँ ।

अपने फटे हुए चिथड़ों से, मेरी आकांक्षा है, मैं विवस्त्र संसार को एक नूतन परिधान से आच्छादित कर स !

छिः ! ओ आत्म-प्रवंचना !

ओ महान्, मेरी इच्छाओं के इस कमज़ोर पुल को अपनी कृपा की बाढ़ में नष्ट-भ्रष्ट कर डाल !

मैं बुद्ध, क्राइस्ट और गाँधी की श्रेणी में स्थान पा सकूँ, यह मेरी इच्छा नहीं है !

कणिकाएँ

आनन्द का लहराता हुआ महासागर मुझे नहीं चाहिए। हर्ष के उमड़ते हुए सोनहले बादल तू मुझे मत दे। केवल करुणा की एक छोटी सी तान सिखा दे, जिसे प्रभात के रंग से रंगे हुए धुँधले और अस्पष्ट संसार में, अपनी भग्न वीणा पर बजाता फिरूँ।

क्या तुम समझे हो कि करुणा के इन थोड़े-से गीतों से संसार में पतझड़ आ जायगी, धूल के बवण्डर उठेंगे, और सर्वनाश की दारुण काली छाया विश्व के प्रभात को नष्ट कर देगी ?

अर्द्ध रात्रि ने उषा के परिधान को पहिन लिया तो क्या ? उसके हृदय में तो वही कालिमा छिपी हुई है। जब-तक आँसुओं के ये प्रबल पनाले नहीं छूटेंगे, वह नष्ट कैसे होगी ?

करुणा देखने में कड़वी लगती, है, मृत्यु-जैसी दारुण—परन्तु साहस करके उसका एक घूँट तो पियो—स्नेह से कैसे सराबोर हो उठोगे !

करुणा हृदय की कोमल आत्मा है, उसे न कुचलो। उसकी आह को कौन सह सकेगा ?

क्या तुम्हारी पाशविक शक्ति में ही बल है, क्या तुम्हारे ये रक्त से भरे हुए शस्त्र आँसू की एक बूँद को काट सकते हैं ?

दो, मेरे ईश्वर, केवल करुणा की एक छोटी-सी तान—जिसे प्रभात के रंग से रंगे हुए धुंधले और अस्पष्ट संसार में, अपनी भग्न-वीणा पर बजाता फिरूं !

लहर

एक छोटी-सी लहर थी, जिसके कारण मेरे हृदय में यह बड़ी लहर उठ खड़ी हुई है।

अभी तक तो हृदय कुञ्ज में बन्द की गई वायु के समान शान्त था। इस छोटी-सी लहर के तूफ़ान में आकर झोंके खाने लगा।

घुटने टेक कर मैं गिर पड़ा, इस छोटी-सी लहर के रचना-कौशल के ऊपर।

ओ सृष्टि के निर्माता, सौन्दर्य के इन छोटे-छोटे टुकड़ों के बनाने में भी क्या तू अपनी कला का सम्पूर्ण कौशल काम में लाता है ?

कितना सादा जीवन है! गोद में प्रकाश खेल रहा हो, या माथे पर अन्धकार के बादल छाये हों, अपने उसी, एक, निरन्तर-प्रवाह से बहते रहना! सदा ही हँसते, कूदते, और किलकते हुए!

जब वर्षा का झोंका सिर पर आता है, तुम्हारा शरीर

वेदना के त्रास से विकृत हो जाता है, परन्तु तुम अपन निरन्तर-प्रवाह को नहीं छोड़ती।

कितना सुन्दर जीवन है! अपने जीवन के छोटे दायरे में आनन्द की किलकारियाँ मारते हुए दौड़ना, और उस स्थान पर जहाँ जीवन और मृत्यु की सन्धि होती है, दौड़ कर, महामिलन के आवेश में, बड़ी-बड़ी लहरों में समा जाना!

और फिर बहते रहना!

कितना अनुकरणीय जीवन है! संध्या की डूबती हुई किरणों को अपने अंगों में चमका कर मुस्करा देना, परंतु हृदय में वियोग की उसी अग्नि को धारण कर, निरन्तर, अबाध-गति से अपने लक्ष्य की ओर बहते रहना!

बहो, बहो, ओ छोटी-छोटी लहरो, अपने इस कमज़ोर जाल में मैं तुम्हें कैसे बाँध सकूँगा, परन्तु, यदि तुम मुझे एक छोटी-सी लहर बनाकर, अपनी टोली में मिला लो, तो मैं भी आनन्द की तालियाँ बजाता हुआ तुम्हारे साथ बह चलूँगा!

निर्वाण

तुमने ही तो कहा था कि मेरी नौका को खेकर तुम मुझे अनन्त की ओर ले चलोगे !

उषा के धुँधले प्रकाश में तुमने मेरी कुटिया में प्रवेश किया था।

उस समय मैं सो रहा था।

प्रेम के आवेश में तुमने मुझे झकझोर डाला, और मेरे रूखे कपोलो पर अपने गहरे चुम्बन का चिन्ह अङ्कित कर दिया।

जब मेरी अलसाई हुई आँखें खुलीं, प्रभात का प्रकाश मेरी कुटिया में घुस रहा था। और, हृदय में, तुम्हारी स्मृति की ज्वाला धधक रही थी।

दिन-भर मैंने तुम्हारी प्रतीक्षा की—प्रतीक्षा, उत्सुक, पागल हृदय से !

पश्चिमी मेघों के पीछे जब सूर्य की अन्तिम लम्बी किरण नष्ट हो रही थी, मैंने सोचा कि एक ऊँचे विमान

में, अपने पास मुझे बिठाकर, तुम मुझे स्वर्ग की ओर ले जा रहे हो।

परन्तु, ओ संसार के कठोर सत्य, अन्धकारमयी नीरव रजनी विश्व के ऊपर फैल गई, और मेरी छोटी-सी कुटिया में स्मृति का भभकता हुआ दीपक जलता रहा, प्रतीक्षा से जलती हुई मेरी आँखों में आँसुओं की सजल घटायें उमड़ती रहीं।

और तुम नहीं आये!

तुमने ही तो कहा था कि मेरी नौका को खेकर तुम मुझे अनन्त की ओर ले चलोगे!

आज विश्व की गरजती हुई लहरों पर, इस अगाध महासागर के किनारे बैठकर, अपने दीपक को बहा देता हूँ!

कब ?

ये कँपा देने वाले नीच आवेशों के क्षण—मैं इन पर कब विजय प्राप्त कर सकूँगा—कब, मेरे ईश्वर ?

उनसे हारता रहता हूँ।

तेरा प्रकाश दूर से चमकता है, पर मैं उसके संदेश को सुन नहीं पाता।

मैं अपने जीवन-श्वासों का कब पान कर सकूँगा ?

मैं तेरे प्रकाश को हाथ में लेकर कब चलूँगा ?

मैं प्रालोभनो से दूर भाग जाता हूँ, पर वे आते हैं, अपना नपा-तुला, निश्चय, क़दम रखते हुए, भीषण, विकृत स्वरूप लिये।

मैं जानता हूँ कि शैतान मुझे कीचड़ में घसीट रहा है, पर मैं अपने आपको रोक नहीं सकता।

मैं उसी दुर्गंधमयी वायु में शान्ति का श्वास लेता हूँ, सुख का अनुभव करता हूँ—जब कि मैं तेरे हलके-नरम दोने में भरे हुए अमृत का पान स्वयं तेरे हाथों कर सकता हूँ।

छिः मुझे !

वे भोलेपन के दिन कब लौटेंगे, वे सौंदर्यमयी तारों-भरी रातें ?

मैं कब फिर तेरी गोदी में विश्राम कर सकूँगा ?—तेरे स्वर्गीय प्रकाश के अलोक में ?

कब आगे बढ़ता चलूँगा—निःसन्देह एक श्रान्त-पथिक—पर अपने लक्ष्य को दोनों हाथों से पास खींचता हुआ ?

अमृत घट

अमृत की बूँदें बह-बह कर मिट्टी के इस कच्चे घड़े में एक हो रही हैं।

अपने वरद हाथों से निर्माण किये हुए इस सुन्दर घड़े को मुझे प्रदान करने की तुमने कृपा की।

हर्ष के मारे मैं नाच तो उठा, पर लोभ के वश भी परीक्षाओं और परिस्थितियों की अग्नि में इसे पका लेने का साहस नहीं किया।

वर्षों से यह घड़ा मेरे पास है, पर इसे स्वच्छ रखने का भी कभी ध्यान नहीं आया।

आज अचानक तुम्हारी अनुकम्पा का बाँध टूट गया है, दया की धारा बह निकली है। और—

अमृत की बूँदें बह-बह कर मिट्टी के इस कच्चे घड़े में एक हो रही है।

प्यासी सृष्टि का जब इसका पता लगेगा, वह सतृष्ण, दौड़ी हुई, मेरे पास आयगी।

उस समय उसे क्या मैं अपनी भूलों के कारण रह जाने वाली मिट्टी में मिले हुए अमृत का पान कराऊँगा!

एक क्षण के लिए रुक जाओ। धारा के प्रवाह को मोड़ दो।

मेरी असावधानी के लिए मुझे क्षमा करो।

मुझे अपने इस कच्चे घड़े को माँज-धो कर साफ़ कर लेने दो।

यह प्रकाश ?

जीवन के उन मीठे क्षणों को याद कर मैं आज भी बेचैन हो जाता हूँ, जिनमें रेत के कणों से तुम्हारा प्रसाद बनाया करता।

उन्हीं कमजोर जंजीरों से मैंने सचमुच तुम्हें अपना बन्दी बना रखा था वह अंधकार की खोज भी कितनी मादक थी !

आज मुझे प्रकाश की किरणें मिल रही हैं। ज्यों-ज्यों वह पास आता जाता है, मेरे पीछे एक घनी काली परछाँई फैलती जाती है।

एक सीमित सकड़े स्थल से निकल कर प्रकाश क्यों मुझ पर आक्रमण कर रहा है ?

प्रकाश के इस अह्वान में कैसी वेदना छिपी हुई थी, कैसा पाप, कैसी विभीषिका !

एक स्थल से ही क्यों, चारों ओर से भी प्रकाश मुझ-पर आक्रमण करे तो मैं प्रसन्न नहीं हो सकूँगा।

उस समय तो छाया और भी बढ़ जायगी, केवल वह झूठे बाहरी आवरण के कारण दिखाई न देगी। यह और भी भीषण होगा।

मुझे तो अन्तर का प्रकाश चाहिए, मेरे मालिक, जो मुझे केन्द्र बना कर विश्व में फैल जाय !

राखी पर

स्नेहमयि, आज तुमने मेरे चारों ओर राखियों का यह कैसा जाल-सा फैला दिया है। स्नेह के इन कोमल वन्धनों में क्या तुम मुझे बाँध सकोगी ?

तुम्हारे पवित्र स्नेह ने आज, आकाश के समान, मुझे चरों ओर से घेर लिया है।

महासागर की लहरों की नांईं, भावनाओं की तरंगें उठती हैं, जिनके प्रवाह में वासना के किनारे टूट कर वह जाते हैं।

प्रकाश के ये सुनहले वादल आकाश में नाच रहे हैं। उनकी ममत्वमयी हलकी वौछारों में मेरी आत्मा वायु के ढेर को ठेल कर, सात्विकता के स्वर्ग की ओर उड़ने की चेष्टा करती है।

वहिन, जीवन की इस दुपहरी में आज तुम अपने स्नेहभरे हाथों से राखी वाँध रही हो। वासना की लहरों पर नाचने वाली मेरी नौका को अपने इस कोमल धागे से खींचकर तुम स्नेह के ओर ले चलो !

ओ पथभ्रष्ट के स्नेह से प्रज्वलित प्राणों की होली वे अपने निर्दिष्ट विकास की ओर अग्रसर ः